इस्लाम सरज़मीने मक्का से सरज़मीने कर्बला तक

अलहसनैन इस्लामी नैटवर्क

इस्लाम मक्के से कर्बला तक

मुसलमानों का मानना है कि हर युग और हर दौर मैं अल्लाह ने इस धरती पर अपने दूत(संदेशवाहक/पैग़म्बर), अपने सन्देश के साथ इस उद्देश्य के लिए भेजे हैं कि अल्लाह के यह दूत इंसानों को सही रास्ता दिखायें और इंसान को बुरे रास्ते पर चलने से रोकें. इन्हीं संदेशवाहकों को इस्लाम में पैग़म्बर या नबी कहा जाता है। ईश्वर की तरफ से संदेशवाहकों की ज़रुरत इसलिए पड़ी क्योंकि ईश्वर ने इंसान को धरती पर पूरी आज़ादी देकर भेजा है। इंसान में इस दुनिया को बनाने के साथ साथ तबाह करने की भी क़ाबलियत है। वह परमाणु पावर से सारी दुनिया रोशन भी कर सकता है और इसी परमाणु अटम बोम्ब के सहारे लाखों लोगों को एक ही पल मैं मौत के मुह मैं भी पहुंचा सकता है।

मुसलमानों के मुताबिक अब तक कुल 313 रसूल/नबी, अल्लाह की तरफ से भेजे जा चुके हैं, इनमें से 5 रसूल बड़े रसूल हैं. जो कि हैं:

1. हज़रत Abraham (इब्राहीम)

2. हज़रत Moses (मूसा)

3. हज़रत David (दावूद)

4. हज़रत Jesus (ईसा)

5. हज़रत Muhammad (मोहम्मद)

हज़रत मोहम्मद इन सब नबियो में सबसे आखिरी नबी हैं।

कुछ और दुसरे नबियों के नाम हैं:

हज़रत Adam (आदम)

हज़रत Nooh (नूह)

हज़रत Ishaaq (इसहाक़)

हज़रत Yaaqub (याक़ूब)

हज़रत Joseph (युसुफ़)

हज़रत Ismail (इस्माइल)

इस्लाम क्या है?

इस्लाम धर्म के मानने वालों को मुस्लिम कहा जाता है। मुस्लिम शब्द सबसे पहले हज़रत इब्राहीम के मानने वालों के लिए इस्तमाल किया गया था।

हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा:

पैग़म्बर हज़रत नूह के कई सौ साल बाद हज़रत इब्राहीम को अल्लाह ने अपना पैग़म्बर बनाया. हज़रत इब्राहीम के दो बेटे हुए, एक हज़रत इस्माइल और दुसरे हज़रत इस्हाक़. इस्हाक़ से बनी इसराइल की नस्ल चली और इस्माइल की नस्ल में हज़रत मोहम्मद ने जन्म लिया।

लेकिन हज़रत मोहम्मद के पूर्वजों में भी एक पूर्वज थे अब्दुल मनाफ़, जिनके यहाँ ऐसे जुड़वाँ बच्चे पैदा हुए जो आपस में जुड़े हुए थे. इन दोनों में से केवल एक ही को बचाया जा सकता था। इसलिए यह फैसला किया गया कि तलवार से काट कर दोनों को अलग किया जाए लेकिन तलवार से अलग किये जाने के बाद दोनों ही बच्चे जीवित रहे. इनमें से एक का नाम हाशिम और दूसरे का नाम उमय्या रखा गया। इसी लिए इन दोनों बच्चों की नस्लों को बनी हाशिम और बनी उमय्या कहा जाने लगा। बनी हाशिम को मक्का के सब से पवित्र धर्म स्थल क़ाबा की देख भाल और धार्मिक कार्य अंजाम देने की ज़िम्मेदारी सोंपी गई थी।

पैग़म्बर मोहम्मद के दादा हज़रत अब्दुल मुत्तलिब अरब सरदारों में बहुत अहम समझे जाते थे, उन्हें सय्यदुल बतहा कहा जाता था। पैग़म्बर साहब के वालिद(पिता) का नाम हज़रत अब्दुल्लाह और वालिदा(माता) का नाम हज़रत आमिना था।

मोहम्मद साहब के पैदा होने से कुछ महीने पहले ही उनके वालिद का इंतिकाल हो गया और उनकी परवरिश की सारी ज़िम्मेदारी दादा हज़रत मुत्तलिब को उठानी पड़ी. कुछ समय के बाद मोहम्मद साहब के दादा भी चल बसे और माँ का साया भी बचपन में ही उठ गया. अब इस यतीम बच्चे की सारी ज़िम्मेदारी चाचा अबूतालिब ने उठाली और हज़रत हलीमा नाम की दाई के संरक्षण मे मोहम्मद साहब की परवरिश की।

बचपन में मोहम्मद साहब भेड़-बकरी को रेवड़ चराने जंगलो में ले जाते थे और इस तरह उनका बचपन गुज़र गया. बड़े होने पर उन्हें अरब की एक धनी महिला हज़रत ख़दीजा के यहाँ नौकरी मिल गई और वह हज़रत ख़दीजा का व्यापार बढ़ाने मे लग गये।

मोहम्मद साहब की ईमानदारी, लगन, निष्टा और मेहनत से हज़रत ख़दीजा का कारोबार रोज़-बरोज़ बढ़ने लगा. मोहम्मद साहब के आला किरदार से हज़रत ख़दीजा इतना प्रभावित हुईं कि उन्होनें एक सेविका के ज़रिए मोहम्मद साहब के पास शादी का पैग़ाम भिजवाया जिस को हज़रत मोहम्मद ने खुशी के साथ क़ुबूल लिया।

इस बीच हज़रत मोहम्मद अरब जगत में अपनी सच्चाई, लगन, इंसानियत-नवाज़ी, बिना किसी पक्षपात वाले तौर तरीक़ो, अमानतदारी और श्रेष्ठ चरित्र के लिए मशहूर हो चुके थे।

एक ओर हज़रत मोहम्मद आम लोगो, ग़रीबों, लाचारों ज़रूरत मंदो और ग़ुलामों की मदद करने काम खामोशी से अंजाम दे रहे थे, दूसरी तरफ अरब जगत ज़ुल्म, अत्याचार, क्रूरता, झूठ, बेईमानी के अँधेरे में डूबता जा रहा था। हज़रत मोहम्मद ने पैग़म्बर होने का ऐलान करने से पहले अरब समाज में अपनी सच्चाई

का लोहा मनवा लिया था। सारे अरब में उनकी ईमानदारी और अमानतदारी मशहूर हो चुकी थी। लोग उनको सच्चा और अमानतदार कहने लगे थे।

जब पेगंबर साहब 30 साल की उमर में पहुँचे तो उनके चाचा हज़रत अबूतालिब के घर में एक बच्चे का जन्म हुआ. पैग़म्बर साहब ने बच्चे की देखभाल की ज़िम्मेदारी अपने सिर ले ली। बाद में इसी बच्चे को दुनिया ने हज़रत अली के नाम से पहचाना. जब हज़रत अली 10 साल के हो गये तो लगभग चालीस साल की उमर में हज़रत मोहम्मद को अल्लाह की तरफ़ से पहली बार संदेश आया: “इक़्रा बिसमे रब्बीका” यानी पढ़ो अपने रब्ब के नाम के साथ। पैग़म्बर साहब यह सुन कर पानी-पानी हो गये और घर लौट कर सारा क़िस्सा अपनी पत्नी हज़रत ख़दीजा को बताया की किस तरह अल्लाह के भेजे हुए फरिश्ते ने उन्हें अल्लाह की खबर दी है. हज़रत ख़दीजा ने फ़ौरन ही यह बात मान ली कि हज़रत मोहम्मद अल्लाह द्वारा नियुक्त किये हुए पैग़म्बर हैं, फिर हज़रत अली ने भी फ़ौरन यह बात स्वीकार कर ली कि मोहम्मद साहब अल्लाह द्वारा भेजे हुए पैग़म्बर है।

शुरू में पैग़म्बर साहब ने ख़ामोशी से अपना अभियान चलाया और कुछ ख़ास मित्रों तक ही बात सीमित रखी. इस तरह तीन साल का वक़्त गुज़र गया. तब अल्लाह की और से सन्देश आया कि अब इस्लाम का प्रचार खुले आम किया जाए. इस आदेश के बाद पैग़म्बर साहब मक्का नगर कि पवित्र पहाड़ी “कोहे सफ़ा ” पर खड़े हुए और जमा लोगों को संबोधित करते हुए कहा कि अगर मैं तुम से कहूँ कि पहाड़ के पीछे से एक सेना आ रही है तो क्या तुम मेरा यक़ीन करोगे? सब ने कहा: “हाँ, क्योंकि हम तुमको सच्चा जानते हैं” , उसके बाद जब पैग़म्बर साहब ने कहा कि अगर तुम ईमान न लाये तो तुम पर सख्त अज़ाब (प्रकोप) नाज़िल होगा तो सब नाराज़ हो कर चले गए. इनमें अधिकतर उनके खानदान वाले ही थे। इस ख़ुतबे (प्रवचन) के कुछ समय बाद पैगंबर साहब ने एक दावत में अपने रिश्तेदारों को बुलाया और उनके सामने इस्लाम का संदेश रखा लेकिन हज़रत अली के अलावा कोई दूसरा परिवार जन हज़रत मोहम्मद को अल्लाह का संदेशवाहक मानने को तैयार नहीं था। तीन बार ऐसी ही दावत हुई और हज़रत अली के अलावा कोई दूसरा व्यक्ति पैगंबर साहब की हिमायत के लिए खड़ा नहीं हुआ, हालाँकि पैगंबर साहब इस बात का न्योता भी दे रहे थे कि जो उनकी बात मानेगा वही उनका उत्तराधिकारी होगा।

जिस समय मुसलमानो की तादाद चालीस हो गई तो पैगंबर साहब ने मक्का के पवित्र स्थल क़ाबा में पहुँच कर यह ऐलान कर दिया कि “अल्लाह के अलावा कोई इबादत के क़ाबिल नही है” । इस प्रकार की घोषणा से मक्का के लोग हक्का बक्का रह गए और उन्होनें चालीस मुसलमानों की छोटी सी टुकड़ी पर हमला कर दिया और एक मुस्लिम नवयुवक हारिस बिन अबी हाला को शहीद कर दिया. उसके बाद हज़रत यासिर को शहीद किया गया, खबाब बिन अलअरत को जलते अंगारों पर लिटा कर यातना दी गई. हज़रत बिलाल को जलती रेत पर लिटा कर अज़ीयत दी गई. सुहैब रूमी का सारा समान लूट कर उन्हें मक़्क़े से निकाल दिया गया. इस्लाम धर्म क़ुबूल करने वाली महिलाओं को भी परेशान किया जाने लगा। इनमें हज़रत यासिर की पत्नी सुमय्या, हज़रत उमर की बहन फातेमा, ज़ुनैयरा, नहदिया और उम्मे अबीस जैसी महिलाएं शामिल थीं। इनमे से कुछ को क़त्ल भी कर दिया गया। अल्लाह के आदेश पर अपने को पैगंबर घोषित करने के पाँचवे साल पैग़म्बर साहब को अपने अनेक साथियों को मक्का छोड़ कर हब्श(अफ्रीका) की और जाने के लिए कहना पड़ा और 16 मुसलमान हबश चले गये. कुछ समय बाद 108 लोगो पर आधारित मुसलमानों का एक और दल हज़रत जाफ़र बिन अबू तालिब के नेतृत्व में मक्का छोड़ कर चला गया।

मुसलमानों के पलायन से मक्के के काफ़िरों का होसला बढ़ गया. ख़ास तौर पर अबू जहल नामक सरदार पैग़म्बर साहब को प्रताड़ित करने लगा. यह देख कर मोहम्मद साहब के चाचा हज़रत हम्ज़ा ने इस्लाम स्वीकार कर लिया। उनके शामिल होने से मुसलमानों को बहुत हौसला मिला क्योंकि हज़रत हम्ज़ा बहुत मशहूर योद्धा थे. फिर भी मक्के वालो ने पैग़म्बर साहब का जीना दूभर किये रखा. बड़े तो बड़े, छोटे छोटे बच्चो को भी पैग़म्बर साहब पर पत्थर फेंकने पर लगा दिया गया। औरते छतों से कूड़ा फेंकने पर लगाईं गई. इस दुश्वार घडी में पत्थर मारने वाले बच्चों को खदेड़ने का काम कम आयु के हज़रत अली ने अंजाम दिया, कूड़ा फैंकने वाली औरत के बीमार पड़ने पर उसकी खैरियत पूछने की ज़िम्मेदारी स्वंय पैग़म्बर साहब ने और मक्का के बड़े बड़े सरदारों की साजिशों से हज़रत मोहम्मद को सुरक्षित रखने का काम हज़रत अली के पिता हज़रत अबू तालिब ने अपने सर ले रखा था. जब हज़रत मोहम्मद का एकेश्वरवाद का सन्देश तेजी से फैलने लगा तो दमनकारी शक्तियाँ और हिंसक होने लगीं और पैग़म्बर साहब के विरोधी खिन्न हो कर उनके चाचा हज़रत अबू तालिब के पास पहुंचे और कहा कि या तो वे हज़रत मोहम्मद को अपने धर्म के प्रचार से रोके या फिर हज़रत मोहम्मद को संरक्षण देना बंद कर दें. हज़रत अबू तालिब ने मोहम्मद साहब को समझाने की कोशिश की लेकिन जब मोहम्मद (स) ने उनसे साफ़ साफ़ कह दिया कि “अगर मेरे एक हाथ में चाँद और दूसरे हाथ में सूरज भी रख दिया

जाए तो भी में अल्लाह के सन्देश को फैलाने से बाज़ नहीं आ सकता। खुदा इस काम को पूरा करेगा या मैं खुद इस पर निसार हो जाऊँगा।

लोगों का मानना है कि इसी समय हज़रत अबू तालिब ने भी इस्लाम कुबूल कर लिया था लेकिन मक्के के हालात देखते हुए उन्होंने इसकी घोषणा करना मुनासिब नहीं समझा. जब यह चाल भी नाकाम हो गई तो मक्के के सरदारों ने एक और चाल चली. उन्होंने अकबा बिन राबिया नाम के एक व्यक्ति को पैग़म्बर साहब के पास भेजा और कहलवाया कि “ऐ मोहम्मद! आखिर तुम चाहते क्या हो? मक्के की सल्तनत? किसी बड़े घराने में शादी? धन, दौलत का खज़ाना? यह सब तुम को मिल सकता है और बात पर भी राज़ी हैं कि सारा मक्का तुम्हे अपना शासक मान ले, बस शर्त इतनी है कि तुम हमारे धर्म मैं हस्तक्षेप न करो” . इसके जवाब में हज़रत मोहम्मद ने कुरआन शरीफ कि कुछ आयते (वचन) सुना दीं. इन आयातों का अकबा पर इतना प्रभाव हुआ कि उन्होंने मक्के वालों से जाकर कहा कि मोहम्मद जो कुछ कहते हैं वे शायरी नहीं है कुछ और चीज़ है। मेरे ख़याल में तुम लोग मोहम्मद को उनके हाल पर छोड़ दो अगर वह कामयाब हो कर सारे अरब

पर विजय हासिल करते हैं तो तुम लोगो को भी सम्मान मिलेगा अन्यथा अरब के लोग उनको खुद ख़तम कर देंगे।

लेकिन मक्के वाले इस पर राज़ी नहीं हुए और हज़रत मोहम्मद के विरुद्ध ज़्यादा कड़े कदम उठाये जाने लगे. (हज़रत मोहम्मद को परेशान करने वालो में अबू सुफ्यान, अबू जहल और अबू लहब सबसे आगे थे). हज़रत मोहम्मद और उनके साथियों का सामाजिक बहिष्कार कर दिया गया. कष्ट की इस घड़ी में एक बार फिर हज़रत मोहम्मद के चाचा हज़रत अबू तालिब ने एक शिविर का प्रबंध किया और मुसलमानों को सुरक्षा प्रदान की।

शोएब-ए-अबू तालिब

इस सुरक्षा शिविर को शोएब-ए-अबू तालिब कहा जाता है. इस दौरान हज़रत अबू तालिब हज़रत मोहम्मद की सलामती को लेकर इतना चिंतित थे कि हर रात मोहम्मद साहब के सोने की जगह बदल देते थे और उनकी जगह अपने किसी बेटे को सुला देते थे. तीन साल की कड़ी परीक्षा के बाद मुसलमानों का बायकाट खत्म हुए। लेकिन मुसलमानों को ज़ुल्म और सितम से छुटकारा नहीं मिला और मक्का वासियों ने मुसलामानों पर तरह तरह के ज़ुल्म जारी रखे।

हज़रत अबू तालिब के देहांत के बाद अत्याचार और बढ़ गए (इसी साल पैग़म्बर साहब की चहीती पत्नी हज़रत ख़दीजा का भी देहांत हो गया) और मोहम्मद साहब की जान के लिये खतरा पैदा हो गया।

मक्के की मुस्लिम दुश्मन शक्तियां मोहम्मद साहब को क़त्ल करने की साजिशें करने लगीं, लेकिन दस वर्ष के समय में पैग़म्बर साहब का फैलाया हुआ दीन मक्के की सरहदें पार कर के मदीने के पावन नगर में फ़ैल चुका था इसलिए मदीने के लोगो ने पैग़म्बर साहब को मदीने में बुलाया और उनको भरोसा दिया की वे मदीने में पूरी तरह सुरक्षित रहेंगे।

पैग़म्बर साहब को जान को खतरा

एक रात मक्के के लगभग सभी क़बीले के लोगो ने पैग़म्बर साहब को जान से मार देने की साज़िश रच ली लेकिन इस साज़िश की खबर मोहम्मद साहब को पहले से लग गई और वेह अपने चचेरे भाई हज़रत अली से सलाह मशविरा करने के बाद मदीने के लिए प्रस्थान करने को तैयार हो गए।

लेकिन दुश्मनों ने उनके घर को चारो तरफ से घेर रखा था. इस माहोल में हज़रत अली मोहम्मद साहब के बिस्तर पर उन्ही की चादर ओढ़ कर सो गए और मोहम्मद साहब अपने एक साथी हज़रत अबू बक्र के साथ रात के अँधेरे में ख़ामोशी से मक्का छोड़ कर मदीने के लिए चले गये. जब इस्लाम के दुश्मनों ने पैग़म्बर साहब के घर पर हमला किया और उनके बिस्तर पर हज़रत अली को सोता पाया तो खीज उठे।

उन लोगों ने पैग़म्बर साहब का पीछा करने की कोशिश की और उन तक लगभग पहुँच भी गए लेकिन जिस गार(गुफा) में हज़रत मोहम्मद छुपे थे उस गुफा के बाहर मकड़ी ने जाला बुन दिया और कबूतर ने घोंसला लगा दिया जिससे कि पीछा करने वाले दुश्मन गुमराह हो गए और पैग़म्बर साहब की जान बच गई. कुछ समय बाद हज़रत अली भी पैग़म्बर साहब से आ मिले।

मदीना

इस तरह इस्लाम के लिए एक सुनहरे युग की शुरुआत हो गई. मदीने में ही पैग़म्बर साहब ने अपने साथियो के साथ मिल कर पहली मस्जिद बनाई. यह

मस्जिद कच्ची मिट्टी से पत्थर जोड़ कर बनाई गई थी और इस पर सोने चांदी की मीनार और गुम्बद नहीं थे बल्की खजूर के पत्तों की छत पड़ी हुई थी।

मक्का छोड़ने के बाद भी इस्लाम के दुश्मनों ने मोहम्मद साहब के खिलाफ़ साजिशें जारी रखीं और उन पर लगातार हमले होते रहे. मोहम्मद साहब के पास कोई बड़ी सेना नहीं थी. मदीने में आने के बाद जो पहली जंग हुई उसमे पैग़म्बर साहब के पास केवल तीन सो तेरह आदमी थे, तीन घोड़े, सत्तर ऊँट, आठ तलवारें, और छेह ज़िर्हे (ढालें) थी. इस छोटी सी इस्लामी फ़ौज का नेतृत्व हज़रत अली के हाथों में था, जो हज़रत अली के लिए पहला तजुर्बा था. लेकिन जिन लोगों को अल्लाह ने प्रशिक्षण दे कर दुनिया में उतारा हो, उन्हें तजुर्बे की क्या ज़रुरत? इतनी छोटी सी तादाद में होने के बावजूद मुसलमानों ने एक भरपूर लश्कर से टक्कर ली और अल्लाह पर अपने अटूट विश्वास का सबूत देते हुए मक्के वालों को करारी मात दी. इस जंग में काफ़िरो को ज़बरदस्त नुकसान उठाना पड़ा. जंगे-बद्र के नाम से मशहूर इस जंग में पैग़म्बर साहब के चचाज़ाद भाई हज़रत अली और मोहम्मद साहब के चाचा हज़रत हम्ज़ा ने दुश्मनों के दांत खट्टे कर दिए और मक्के के फ़ौजी सरदार अबू सुफ्यान को काफ़ी ज़िल्लत(बदनामी) उठानी पड़ी. उसके साथ आने वाले बड़े बड़े काफिर सरदार और योद्धा मारे गए।

मोहम्मद साहब न तो किसी की सरकार छीनना चाहते थे न उन्हें देश और ज़मीन की ज़रुरत थी, वे तो सिर्फ इस धरती पर अल्लाह का सन्देश फैलाना चाहते थे. मगर उन पर लगातार हमले होते रहे जबकि खुद मोहम्मद साहब ने कभी किसी पर हमला नहीं किया और न ही इस्लामी सेना ने किसी देश पर चढाई की. इस का अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि पैग़म्बर साहब और उनके साथियों पर कुल मिला कर छोटे बड़े लगभग छियासी युद्ध थोपे गये और यह सारी लड़ाईयाँ मदीने के आस पास लड़ी गई. केवल जंगे-मौता के मौके पर इस्लामी फ़ौज मदीने से आगे बढ़ी क्योंकि रोम के बादशाह ने मुसलमानों के दूत को धोके से मार दिया था।

मगर इस जंग में मुसलमानों की तादाद केवल तीन हज़ार थी और रोमन लश्कर(सेना) में एक लाख सैनिक् थे इसलिए इस जंग में मुसलमानों को कामयाबी नहीं मिली. इस जंग में पैग़म्बर साहब के चचेरे भाई हज़रत जाफर बिन अबू तालिब और कई वीर मुसलमान सरदार शहीद हुए. यहाँ पर यह कहना सही होगा कि मोहम्मद साहब ने न तो कभी किसी देश पर हमला किया, न ही इस्लामी शासन का विस्तार करने के लिए उन्होंने किसी मुल्क पर चढ़ाई की बल्कि उन को

ही काफ़िरो(नास्तिको) ने हर तरह से परशान किया. जंगे-अहज़ाब के मौके पर तो काफ़िरो ने यहूदियों और दूसरी इस्लाम दुश्मन ताकतों को भी मिला कर मुसलमानों पर चढ़ाई की, लेकिन इस के बाद भी वे मुसलमानों को मात नहीं दे सके।

जंगे-उहद के मौके पर तो पैग़म्बरे इस्लाम (स) को अभूतपूर्व क़ुरबानी देनी पड़ी. इस जंग में पैग़म्बरे इस्लाम (स) के वीर चाचा हज़रत हम्ज़ा शहीद हो गए, उनकी शहादत के बाद पैग़म्बर अकरम (स) के सब से बड़े दुश्मन अबू सुफ्यान की पत्नी हिंदाह ने अपने ग़ुलाम की मदद से हज़रत हम्ज़ा का सीना काट कर उनका कलेजा निकाल कर उसे चबाया और उनके कान नाक काट कर अपने गले मैं हार की तरह पहना। इस के उलट हज़रत मोहम्मद (स) ने जंग में मारे गए दुसरे पक्ष के मृत सैनिको की लाशों को अपमान करने की मनाही की।

इसके बाद भी लगातार मुसलमानों को हर तरह से परेशान किया जाता रहा मगर काफ़िरो को सफलता नहीं मिली। इस्लाम का नूर(रौशनी) दूर दूर तक फैलने लगा। खुले आम थोपी जाने वाली जंगो के साथ साथ पैग़म्बरे इस्लाम (स) को

चोरी छुपे मारने की कोशिशे भी होतीं रहीं। एक बार बिन हारिस नाम के एक काफिर ने मोहम्मद साहब को एक पेड़ के नीचे अकेला सोते हुए देख कर तलवार से हमला करना चाह और पैग़म्बर (स) को आवाज़ दे कर कहा कि “ऐ मोहम्मद इस वक़्त तुम को कोन बचा सकता है?” हज़रत ने इत्मीनान(आराम से/बिना किसी डर के) से जवाब दिया “मेरा अल्लाह” । यह सुन कर बिन हारिस के हाथ काँपने लगे और तलवार हाथ से छूट गई।

हज़रत ने तलवार उठा ली और पूछा: “अब तुझे कौन बचा सकता है?”। वह बोला, “आप का रहम-ओ-करम” । हज़रत ने जवाब दिया ” तुझ को भी अल्लाह ही बचाएगा” । यह सुन कर बिन हारिस ने अपने सर पैग़म्बरे इस्लाम (स) के पैरों पर रख दिया और मुसलमान हो गया।

मदीने में एक तरफ तो पैग़म्बर (स) पर काफ़िरो के हमले हो रहे थे तो दूसरी तरफ़ हज़रत का परिवार फल फूल रहा था. उन की इकलोती बेटी हज़रत फ़ातिमा की शादी हज़रत अली (अ) से होने के बाद हज़रत मोहम्मद (स) के घर में दो चाँद हज़रत हसन और हज़रत हुसैन (अ) के रूप में चमकने लगे थे। जिन्हें हज़रत मोहम्मद (अ) अपने बेटों से भी ज्यादा अज़ीज़ रखते थे, पैग़म्बरे इस्लाम (स) के

बेटे हज़रत क़ासिम बचपन में ही अल्लाह को प्यारे हो गए थे इसलिए भी पैग़म्बरे इस्लाम (स) अपने नवासो से बहोत प्यार करते थे। पैग़म्बरे इस्लाम (स) की दो नवासियाँ भी थी जिनको इस्लामी इतिहास में हज़रत जैनब और हज़रत उम्मे कुलसूम कहा जाता है।

मदीने में रह कर इस्लाम के प्रचार प्रसार में लगे हज़रत मोहम्मद को किसी भी तरह हरा देने की साज़िशे रचने वाले काफ़िरो ने कई बार यहूदी और अन्य वर्गों के साथ मिल कर भी मदीने पर चढाई की मगर हर बार उनको मुंह की खानी पड़ी और उनके बड़े बड़े वीर योद्धा हज़रत अली के हाथों मारे गए. इन लडाइयों में जंगे-खैबर और जंगे-ख़न्दक का बहोत महत्त्व है। इस्लाम की हिफाज़त करने मैं हज़रत अली ने जिस बहादुरी और हिम्मत का सुबूत दिया, उससे इस्लाम का सर तो ऊँचा हुआ ही खुद हज़रत अली भी इस्लामी जगत मैं वीरता और बहादुरी के प्रतीक के रूप मैं पहचाने जाने लगे और आज तक बहादुर और वीर लोग “या अली ” कहकर मैदान में उतारते हैं. आम लोग संकट की घड़ी में “या अली” या “या अली मदद” कहकर उनको मदद के लिए आवाज़ देते हैं।

हज़रत अली (अ)ने इस्लाम की सुरक्षा और विस्तार के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया। उन्होंने बड़ी बड़ी जंगो मैं हिस्सा लिया और इस्लामी सेना को विजय दिलाई लेकिन इतिहास इस बात का भी गवाह है की उनके हाथों कोई बेगुनाह नहीं मारा गया और न ही उन्होंने किसी निहत्थे पर वार किया। जो भी उनसे लड़ने आया उसको उन्होंने यही मशविरा (सलाह/राय) दिया की अगर वह चाहे तो जान बचाकर जा सकता है और जान बचा कर भाग लेने में कोई शर्त भी नहीं थी।

सुलह-ए-हुदेबिया

पैग़म्बरे इस्लाम (स) और मुसलमानों पर लगातार हमलों के बावजूद इस्लाम रोज़ बरोज़ फैलता जा रहा था आखिर थक आर कर मक्के के अनेक क़बीलो ने पैग़म्बरे इस्लाम (स) के साथ समझोता कर लिया। यह समझोता “सुलह-ए-हुदेबिया ” के नाम से मशहूर है। पैग़म्बरे इस्लाम (स) के शांति प्रिय होने का सबसे बड़ा सुबूत इस संधि के मौके पर देखने को मिला जब उन्होंने काफ़िरो के ज़ोर देने पर सहमती पत्र पर से अपने नाम के आगे से रसूल अल्लाह(अल्लाह के रसूल) काट दिया और केवल मोहम्मद बिन अब्दुल्लाह लिखा रहने दिया हालांकि पैग़म्बरे

इस्लाम (स) के सहयोगी इस पर राज़ी नहीं थे की पैग़म्बरे इस्लाम (स) के नाम के आगे से रसूल अल्लाह लफ्ज़ काटा जाए।

फतहे मक्का

कुछ दिन बाद इस संधि को तोड़ते हुए पैग़म्बरे इस्लाम (स) के सहयोगी क़बीले बनी खिज़ाअ के एक व्यक्ति को काफ़िरो के एक क़बीले बनी बकर ने मक्का नगर की सबसे सबसे पाक पवित्र जगह क़ाबा के आँगन में ही मार डाला तो पैग़म्बरे इस्लाम (स) ने दस हज़ार मुसलमानों को लेकर मक्के की तरफ़ प्रस्थान किया। मक्के की सीमा पर पहुँचने से पहले ही इस्लाम का कट्टर और सबसे बड़ा दुश्मन अबू सूफ़ियान मुसलमानों की जासूसी करने के लिए आया लेकिन घिर गया। लेकिन मुसलमानों ने उसे मारा नहीं और बल्कि पनाह दे दी। पैग़म्बर के चाचा हज़रत अब्बास ने सुफियान को मशविरा दिया की वह इस्लाम स्वीकार कर ले। अबू सुफियान ने मजबूरी मैं इस्लाम कुबूल कर लिया और मक्के वालों की और से किसी तरह के प्रतिरोध के बिना मुसलमान लगभग आठ साल के अप्रवास के बाद मक्के में दाखिल हुए।

इस विजय की ख़ुशी में मुसलमानों का ध्वज उठा कर चल रहे सेनापति सअद बिन अबादा ने जोश में आकर यह ऐलान कर दिया कि आज बदले का दिन है और आज हर तरह का इंतिकाम जायज़ है। इस घोषणा से पैग़म्बरे इस्लाम (स) इतने नाराज़ हुए कि उन्होंने अलम (झंडे) को सअद से लेकर हज़रत अली को सोंप दिया और दुनिया को बता दिया की इस्लाम जोश नहीं होश की मांग करता है. इस जीत के मौके पर बदला या इंतिकाम लेने कि जगह पर पैग़म्बरे इस्लाम (स) ने सभी मक्का वासियों को माफ़ कर दिया. पैग़म्बरे इस्लाम (स) ने हिन्दा(अबू सूफ़ियान की पत्नी) नाम की उस औरत को भी माफ़ कर दिया जिसने मोहम्मद साहब के प्यारे चाचा हज़रत हम्ज़ा का कलेजा चबाने का जघन्य अपराध किया था।

लगभग अठारह दिन मक्के में रहने के बाद मुसलमान जब वापस मदीने लौट रहे थे तो ताएफ़ नामक स्थान पर काफिरों ने उन्हें घेर लिया. पहले तो मुसलमानों में अफ़रातफरी फैल गई। लेकिन बाद में मुसलमानों ने जम कर मुकाबला किया और काफ़िरो को करारी मात दी। इस जंग को जंग-ए-हुनैन कहा जाता है।

जंगे-ए-मौता में मुसलमानों को मात देने वाली रोम की सेना के हौंसले एक बार फिर बढ़ गए थे. रोम के हरकुलिस(Harqulis) बादशाह ने इस्लाम को मिटा देने के इरादे से फिर एक बार फौजें जमा कर लीं और पैग़म्बरे इस्लाम (स) ने भी सारे मुसलमानों से कह दिया की वह जान की बाज़ी लगाने को तैयार रहे। तबूक नामक स्थान पर इस्लामी सेनायें रोमियों का मुकाबला करने पहुँचीं. मगर रोम वाले मुसलामानों की ताक़त का अंदाज़ा लगा चुके थे इस लिए यह युद्ध टल गया। इस के बाद मुसलमानों के बीच घुस कर कुछ दुश्मनों ने पैग़म्बरे इस्लाम (स) के ऊंट को घाटी में गिरा कर मार डालने की साज़िश रची लेकिन अल्लाह ने उनको बचा लिया।

मक्का की विजय के लगभग एक साल बाद नज़रान नामक जगह के ईसाई मोहम्मद साहब से वाद विवाद के लिए आये और हज़रत ईसा मसीह को खुदा का बेटा साबित करने की कोशिश करने लगे तो पैग़म्बरे इस्लाम (स) ने उनको बताया की इस्लाम धर्म, ईसा मसीह को अल्लाह का पवित्र पैग़म्बर मानता है, ईश्वर का बेटा नहीं. क्योंकि अल्लाह हर तरह के रिश्ते से परे है.

मगर मुसलमान हज़रत ईसा के चमत्कारिक जन्म पर यक़ीन रखते हैं और यह भी मानते हैं कि उनका कोई पिता नहीं था. जब ईसाइयों ने कहा की बिना बाप के कोई बच्चा कैसे जन्म ले सकता है तो हज़रत मोहम्मद ने कहा कि “वही अल्लाह जिसने हज़रत आदम(Adam) को बग़ैर माँ-बाप के पैदा किया, ईसा मसीह को बग़ैर पिता के क्यों पैदा नहीं कर सकता?” मगर ईसाईयों ने हट नहीं छोड़ी. इस पर हज़रत मोहम्मद ने क़ुरान में अल्लाह द्वारा कही गई आयत को आधार मानते हुए ईसाईयों को यह आयत सुना दी जिसमें अल्लाह ने कहा है कि “अगर यह लोग तुम से उलझते रहें, ऐसी विश्वस्निये दलीलों के बाद भी जो पेश हो चुकी हैं तो कह दो कि हम अपने बेटों को बुलाएं तुम अपने बेटों को बुलाओ और हम अपनी औरतों को बुलाएँ तुम अपनी औरतों को बुलाओ, हम अपने सबसे क़रीबी साथियों को बुलाएँ तुम अपने साथियों को बुलाओ फिर खुदा की तरफ(क़ाबे के तरफ़) रुख करें, और अल्लाह की लानत (अभिशाप/बद-दुआ) करार दें उन झूटों पर” . ईसाई इस पर राज़ी हो गए. यह वाद विवाद “मुबाहिला” के नाम से मशहूर है।

दूसरे दिन हज़रत मोहम्मद अपने छोटे छोटे नवासों हज़रत हसन और हज़रत हुसैन, बेटी हज़रत फातिमा और दामाद हज़रत अली के साथ मैदान-ए-मुबाहिला मैं पहुँच गए. इन्हीं पवित्र लोगों को मुसलमान पंजतन कहते हैं. पाँच नूरानी

व्यक्तित्व देख कर ईसाई घबरा गए और मुबाहिले के लिए तैयार हो गए. इस संधि के तहत ईसाई हर साल पैग़म्बरे इस्लाम (स) को एक निश्चित रक़म टेक्स के रूप मैं देने पर राज़ी हो गए जिसके बदले मैं पैग़म्बरे इस्लाम (स) ने वायदा किया कि वे ईसाइयों को उनके घर्म पर ही रहने देंगे।

इस्लाम के खिलाफ चलने वाले सारे अभियानों को नाकाम करने के बाद पैग़म्बरे इस्लाम (स) ने हज़रत अली हो यमन देश मैं इस्लाम के प्रचार के लिए भेजा. वहाँ जाकर हज़रत अली ने इस तरह प्रचार किया कि हमदान का पूरा क़बीला मुसलमान हो गया।

आखरी हज

इसी साल हज़रत मोहम्मद अपनी अंतिम हज यात्रा पर गए. हज़रत अली भी यमन से सीधे मक्का पहुँच गए जहाँ से वो लोग हज करने के लिए मैदाने अराफ़ात, मुज्द्लिफ़ा और मीना गए और फिर हज के अंतिम चरण में मक्का पहुँचे।

हज से वापस लौटते समय पैग़म्बरे इस्लाम (स) ने ग़दीर-ए- ख़ुम नाम के स्थान पर क़ाफिले को रोक कर इस बात का ऐलान किया कि अल्लाह का दीन अब मुक़म्मल हो गया है और आज से सब लोग बराबर हैं. अब किसी को किसी पर कोई बरतरी प्राप्त नहीं हैं. अब न तो कोई क़बीले की बुनियाद पर ऊँचा है, न किसी को रंग और नसल के आधार पर कोई बुलंद दर्जा हासिल हैं। आज से श्रेष्ठता और बड़ाई का कोई मेअयार (मापदंड) अगर है तो बस यह है कि कौन चरित्रवान है और किस के दिल मैं अल्लाह का कितना खौफ़ है. इसके बाद पैग़म्बरे इस्लाम (स) ने ऐलान किया कि "जिस जिस का मैं मौला (नेता/स्वामी) हूँ, यह अली भी उसके मौला हैं" ।

पैगंबर का निधन

इसके लगभग दो महीने बाद 29 मई 632 में पैग़म्बरे इस्लाम (स) का मदीने मैं ही निधन हो गया. पैग़म्बरे इस्लाम (स) के दोस्त और अनेक वरिष्ठ साथी उनके निघन के समय मौजूद नहीं थे क्योंकि वे लोग सकीफ़ा नामक उस जगह पर उस मीटिंग में हिस्सा ले रहे थे जिसमें पैग़म्बरे इस्लाम (स) का उत्तराधिकारी

चुनने के लिए वाद विवाद चल रहा था। पैग़म्बरे इस्लाम (स) को हज़रत अली ने केवल परिवार वालों कि मौजूदगी मैं दफ़न किया।

सक़ीफा

इस बीच मुसलमानों के उस गिरोह ने जो कि सकीफ़ा मैं जमा हुआ था, पैग़म्बरे इस्लाम (स) के एक वरिष्ट मित्र हज़रत अबू बकर को मोहम्मद साहब के उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

इस घटना के बाद मुसलमानों मैं उत्तराधिकार के मामले को लेकर कलह पैदा हो गई. क्योंकि मुसलामानों के एक वर्ग का कहना था कि पैग़म्बरे इस्लाम (स) ग़दीर-ए-खुम मैं हज़रत अली को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर चुके हैं परन्तु दुसरे वर्ग का कहना था कि मौला का मतलब दोस्त भी होता है. इस लिए पैग़म्बरे इस्लाम (स) की घोषणा उत्तराधिकारी के मामले मैं लागू नहीं होती।

जब पैग़म्बरे इस्लाम (स) के मित्र और साथी वापस आये तो मोहम्मद साहब को दफ़न किया जा चुका था. शिया मुसलामानों की धार्मिक पुस्तकों के अनुसार पैग़म्बरे इस्लाम (स) के निधन के बाद उनके परिवार जनों को काफ़ी प्रताड़ित किया गया। हज़रत अली के घर के दरवाज़े मैं आग लगाई गई. दरवाज़ा गिरने से पैग़म्बरे इस्लाम (स) की पवित्र बेटी हज़रत फ़ातिमा की कोख में पल रहे हज़रत मोहसिन का निधन हो गया।

मगर इस्लाम मैं वीरता और साहस के प्रतीक के रूप मैं पहचाने जाने वाले हज़रत अली, सहनशीलता और सब्र का प्रतीक बनकर हर दुःख को चुपचाप सह गए क्योंकि उस समय अगर हज़रत अली कि तलवार उठ जाती तो हज़रत अली दुश्मनों को तो ख़त्म कर देते, लेकिन उससे इस्लाम को भी नुक्सान पहुँचता क्योंकि उस समय हज़रत मोहम्मद द्वारा फैलाया हुआ इस्लाम शुरूआती दौर में था और मुसलामानों की तादाद आज की तरह करोड़ों-अरबों में न होकर केवल हज़ारों में थी। हज़रत अली सत्ता तो प्राप्त कर लेते लेकिन इस्लाम का कहीं नामों-निशान न होता, जोकि इस्लाम के दुश्मन चाहते थे। इसका सबूत यह है कि जब इस्लाम का घोर दुश्मन रह चुका अबू सुफियान हज़रत अली के पास आया और बोला कि अगर अली अपने हक के लिए लड़ना चाहते हैं तो वह मक्के की गलियों

को हथियार बंद सिपाहियों और खुड़सवारों से भर सकता है. इस पर हज़रत अली ने जवाब दिया कि “ए अबू सुफियान, तू कब से इस्लाम का हमदर्द हो गया?”।

शहादते हजरत फातेमा

हज़रत अली और उनके परिवार को आतंकित करने की इस घटना का हज़रत फ़ातिमा पर इतना असर हुआ कि वे केवल अठारह साल कि उम्र मैं ही इस दुनिया से कूच कर गईं. कुछ इतिहासकारों का मानना है कि हज़रत फ़ातिमा पैग़म्बरे इस्लाम (स) के निधन के बाद केवल नौ दिन ही ज़िन्दा रहीं जबकि कुछ कहते हैं कि हज़रत फ़ातिमा बहत्तर दिनों तक ज़िन्दा रहीं। इस तरह पैग़म्बरे इस्लाम (स) के परिवार जनों को खुद मुसलामानों द्वारा सताए जाने की शुरुआत हो गई।

अजीब बात यह है कि पैग़म्बरे इस्लाम (स) के जीवन मैं उनके परिवार जन काफिरों के आतंकवाद का निशाना बनते रहे और मोहम्मद साहब के इंतिक़ाल के बाद उन्हें ऐसे लोगों ने ज़ुल्मों सितम का निशाना बनाया जो खुद को मुसलमान कहते थे. हज़रत फातिमा को फिदक़ नामक बाग़ उनके पिता ने तोहफे के रूप में दिया था. इस बाग़ का हज़रत अबू बकर की सरकार ने क़ब्ज़ा कर लिया था. इस

बात से भी हज़रत फ़ातिमा बहुत दुखी रहीं क्योंकि वह अपने पिता के दिए हुए तोहफे से बहुत प्यार करती थीं।

हज़रत फ़ातिमा के निधन के लगभग 6 महीने बाद तक हज़रत अली और हज़रत अबू बकर के बीच सम्बन्ध बिगड़े रहे. इस बीच हज़रत अली पवित्र क़ुरान कि प्रतियों को इकठ्ठा करते रहे और खुद को केवल धार्मिक कामों में सीमित रखा।

पैग़म्बरे इस्लाम (स) के बाद मुसलमान दो हिस्सों में बंट गए, एक वर्ग इमामत पर यकीन रखता था और दूसरा खिलाफत पर. इमामत पर यकीन रखने वाले दल का मानना था कि पैग़म्बरे इस्लाम (स) के उत्तराधिकारी का फैसला केवल अल्लाह की तरफ से हो सकता है और हज़रत मोहम्मद अपने दामाद हज़रत अली को पहले ही अपना उत्तराधिकारी घोषित कर चुके थे. जबकि दूसरे दल का मानना था कि केवल मदीने के पवित्र नगर में आबाद मुसलमान मिल कर पैग़म्बरे इस्लाम (स) का उत्तराधिकारी चुन सकते हैं।

दो वर्ष बाद हज़रत अबू बक़र का निधन हो गया और मरते समय उन्होंने अपने दोस्त हज़रत उमर को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर दिया।

हज़रत उमर ने लगभग ग्यारह साल तक राज किया और एक जानलेवा हमले में घायल होने के बाद नए खलीफा का चयन करने के लिए छः सदस्यों की एक कमिटी बना दी. इस कमिटी के सामने खलीफा के पद के लिए दो नाम थे. एक हज़रत अली का और दूसरा हज़रत उस्मान का. इस कमिटी मैं एक व्यक्ति को वीटो पावर भी हासिल थी। समिति ने हज़रत अली से जब यह जानना चाहा कि वे अपने से पहले शासक रह चुके दो खलीफाओं की नीतियों पर चलेंगे? तो हज़रत अली ने कहा कि वे केवल पैग़म्बरे इस्लाम (स) और पवित्र कुरान का अनुसरण करने को बाध्य हैं। इस जवाब के बाद और वीटो पावर की बुनियाद पर हज़रत उस्मान को ख़लीफा बना दिया गया। हज़रत उस्मान के शासन काल में उनकी नीतियों से मुसलमानों में बहुत असंतोष फैल गया। ख़ास तौर पर उनके द्वारा नियुक्त किये गए एक अधिकारी मर-वान ने लोगों को बहुत सताया। मुस्लिम समुदाय मर-वान के ज़ुल्मो के खिलाफ दुहाई देने के लिए मदीने में जमा हुआ मगर उनको इंसाफ के बदले धोखा मिला, तत्पश्चात मुसलमानों में उग्रवाद फैल गया और एक क्रुद्ध भीड़ ने हज़रत उस्मान की हत्या कर दी. शासक द्वारा आम

जनता का खून बहाना तो सदियों से एक मामूली सी बात है लेकिन किसी शासक की आम जनता द्वारा हत्या अपने आप में एक अभूतपूर्व घटना थी. इसने सारे मुस्लिम जगत को हिला कर रख दिया और शासको तक यह पैग़ाम भी पहुँच गया की किसी भी मुस्लिम शासक को शासन के दौरान अपनी नीतियों को लागू करने का अधिकार नहीं है बल्कि केवल कुरान और सुन्नत(पैग़म्बरे इस्लाम (स) का आचरण) ही शासन की बुनियाद हो सकता है।

हज़रत अली और उनके विरोधी

हज़रत उस्मान की हत्या के बाद तीन दिन तक स्थिति बहुत ही ख़राब रही। मदीने में अफरातफरी का माहोल था, ऐसे में जनता की उम्मीद का केंद्र एक बार फिर पैग़म्बरे इस्लाम (स) का घर हो गया. हजारों नर-नारी बनीहाशिम के मोहल्ले में उस पवित्र घर पर आशा की नज़रें टिकाये थे, जहाँ हज़रत अली (अ) रहते थे। इन लोगो ने फ़रियाद की कि दुःख की इस घडी में हज़रत अली (अ) खिलाफत का पद संभालें। इस बार न तो सकीफ़ा जैसी चुनावी प्रक्रिया अपनाई गई न ही किसी

ने हज़रत अली (अ) को मनोनीत किया और न कोई ऐसी कमिटी बनी जिसमें किसी को वीटो पावर प्राप्त थी।

हज़रत अली (अ) ने जनता के आग्रह को स्वीकार किया और खिलाफत संभाल ली. लेकिन खलीफा के पद पर बैठते ही हज़रत अली (अ) के विरोधी सक्रिय हो गए. पहले तो पैग़म्बरे इस्लाम (स) की एक पत्नी हज़रत आयशा को यह कह कर भड़काया गया कि हज़रत उस्मान के क़ातिलों को हज़रत अली (अ) सजा नहीं दे रहे हैं और इस तरह के इलज़ाम भी लगाये गए की जैसे खुद हज़रत अली (अ) भी हज़रत उस्मान की हत्या में शामिल रहे हो। जब्कि हज़रत अली (अ) ने हज़रत उस्मान और उनके विरोधियों के बीच सुलह सफाई करवाने की पूरी कोशिश की और घेराव के दौरान उनके लिए खाना पानी अपने बेटों हज़रत हसन और हज़रत हुसैन (अ) के हाथ लगातार भेजा. हज़रत आयशा जो पहले खलीफा हज़रत अबू बक़र की बेटी थीं, अनेक कारणों से हज़रत अली (अ) से नाराज़ रहती थीं. वह ख़िलाफ़त की गद्दी पर अपने पिता के पुराने मित्रों तल्हा और ज़ुबैर को देखना चाहती थीं।

जब लोगों ने क़त्ले उस्मान को लेकर उनके कान भरे तो उन्हें हज़रत अली (अ) से पुरानी दुश्मनी निकालने का मौका मिल गया. उन्होंने एक बड़ी सेना के साथ

हज़रत अली (अ) के इस्लामी शासन पर हमला कर दिया और इस अभियान को क़त्ले-उस्मान का इंतिकाम लेने वाला जिहाद करार दिया। यहीं से जिहाद के नाम को बदनाम करने का सिलसिला शुरू हुआ। जब्कि हज़त उस्मान का क़त्ल मिस्र देश के दूसरे भागों से आये हुए असंतुष्ट लोगो के हाथो हुआ था. मगर हज़रत आयशा इस का इंतिकाम हज़रत अली (अ) से लेना चाहती थीं।

उन्होंने हमले के लिए इराक के बसरा नगर को चुना क्योंकि वहां पर हज़रत अली (अ) के शिया मित्र बड़ी संख्या में रहते थे। बसरा के गवर्नर उस्मान बिन हनीफ़ को हज़रत आयशा की सेना ने बहुत अपमानित किया। हनीफ, हज़रत आयशा की सेना का सही ढंग से मुकाबला नहीं कर सके क्योंकि हज़रत अली (अ) की इस्लामी सेनाएं उस वक़्त तक बसरा में पहुँच नहीं सकीं थीं।

हुनैन ने इस घटना की जानकारी जीकार के स्थान पर मौजूद हज़रत अली (अ) तक पहुंचाई। हज़रत अली (अ) ने विभिन्न लोगो से हज़रत आयशा तक यह सन्देश भिजवाया कि वह युद्ध से बाज़ आ जाए और अपने राजनितिक मकसद को पूरा करने के लिए मुसलामानों का खून न बहाएं मगर वो राज़ी नहीं हुई।

जंग-ए-जमल

हिजरत के 36 वें वर्ष में इराक़ के बसरा नगर में हज़रत अली (अ) और हज़रत आयशा की सेनाओ के बीच युद्ध हुआ. इस जंग को जंग-ए-जमल भी कहते हैं क्योंकि इस युद्ध में हज़रत आयशा ने अपनी सेना का नेतृत्व ऊँट पर बेठ कर किया था और ऊँट को अरबी भाषा में जमल कहा जाता है।

इस जंग का नतीजा भी वही हुआ जो इस से पहले की तमाम इस्लामी जंगो का हुआ था, जिसमें नेतृत्व हज़रत अली (अ) के हाथों में था। हज़रत आयशा की सेना को मात मिली। हज़रत आयशा जिस ऊँट पर सवार थीं जंग के दौरान उस से नीचे गिरी, हज़रत अली (अ) ने उनको किसी प्रकार की सज़ा देने के बदले उनको पूरे सम्मान के साथ उनके छोटे भाई मोहम्मद बिन अबू बक़र और चालीस महिला सिपाहियों के संरक्षण में मदीने वापस भेज दिया. इस तरह उन इस्लामी आदर्शों की हिफ़ाज़त की जिनके तहत महिलाओं के मान सम्मान का ख्याल रखना ज़रूरी है। हज़रत अली (अ) की तरफ से अच्छे बर्ताव का ऐसा असर हुआ कि हज़रत आयशा राजनीति से अलग हो गईं। इस युद्ध के बाद और इस्लामी शासन के

लिए लगातार बढ़ रहे खतरे को देखते हुआ हज़रत अली (अ) ने इस्लामी सरकार की राजधानी मदीने से हटा कर इराक के कूफा नगर में स्थापित कर दी।

इस जंग के बाद कबीले वाद की पुश्तेनी दुश्मनी ने एक बार फिर सर उठाया और उमय्या वंश के एक सरदार अमीर मुआविया ने हज़रत अली (अ) के इस्लामी शासन के खिलाफ विद्रोह कर दिया। इसका एक कारण यह भी था की पैग़म्बरे इस्लाम (स) के निधन के बाद इस्लामी नेतृत्व दो हिस्सों में बँट गया था, एक को इमामत और दूसरे को ख़िलाफ़त कहा जाता था।

इमामों पर विशवास रखने वाले दल को यकीन था की इमाम व पैग़म्बर सिर्फ अल्लाह द्वारा चुने होते हैं। जबकि खिलाफत पर विश्वास रखने वाले दल का मानना था की पैग़म्बर अल्लाह की तरफ से नियुक्त होते हैं लेकिन उत्तराधिकारी चुनने का अधिकार जनता को प्राप्त है या कोई ख़लीफ़ा मरते वक़्त किसी को मनोनीत कर सकता था अथवा कोई ख़लीफ़ा मरते समय एक चयन समिति बना सकता था. इन्हीं मतभेदों को लेकर पैग़म्बरे इस्लाम (स) के बाद मुस्लिम समाज दो बागों में बंट गया।

खिलाफत पर यकीन रखने वाला दल संख्या में ज्यादा था और इमामत पर यकीन रखने वालों की संख्या कम थी। बाद में कम संख्या वाले वर्ग को शिया और अधिक संख्या वाले दल को सुन्नी कहा जाने लगा लेकिन जब हज़रत अली (अ) ख़लीफ़ा बने तो इमामत और खिलाफत सा संगम हो गया और मुसलमानों के बीच पड़ी दरार मिट गई। यही एकता इस्लाम के पुराने दुश्मनों को पसंद नहीं आई और उन्होंने मुसलामानों के बीच फसाद फैलाने की ग़रज़ से तरह तरह के विवाद को जन्म देना शुरू कर दिए और मुसलामानों का खून पानी की तरह बहने लगा।

अमीर मुआविया ने पहले तो क़त्ले उस्मान के बदले का नारा लगाया लेकिन बाद में ख़िलाफ़त के लिए दावेदारी पेश कर दी. मुआविया ने ताक़त और सैन्य बल के ज़रिये सत्ता पर क़ब्ज़ा करने की कोशिश के तहत सीरिया के प्रान्त इस्लामी राज्य से अलग करने की घोषणा कर दी। मुआविया को हज़रत उस्मान ने सीरिया का गवर्नर बनाया था। दोनों एक ही काबिले बनी उम्म्या से ताल्लुक अखते थे, फिर मुआविया ने एक बड़ी सेना के साथ हज़रत अली (अ) के इस्लामी शासन पर धावा बोल दिया और इस को भी जिहाद का नाम दिया. जबकि यह इस्लामी शासन के खिलाफ खुली बगावत थी।

जंगे सिफ्फीन

हिजरत के 39वे वर्ष में सिफ्फीन नामन स्थान पर इस्लामी सेनाओं और सीरिया के गवर्नर अमीर मुआविया के सेनाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ. मुआविया की सेनाओ ने रणभूमि में पहले पहुँच कर पानी के कुओं पर क़ब्ज़ा कर लिया और हज़रत अली की सेना पर पानी बंद करके मानवता के आदर्शों पर पहला वार किया. हज़रत अली की सेनाओं ने जवाबी हमला करके कुओं पर क़ब्ज़ा कर लिया. लेकिन इस बार किसी पर पानी बंद नहीं हुआ और मुआविया की फ़ौज भी उसी कुएं से पानी लेती रही जिस पर अली वालों का क़ब्ज़ा था. इस युद्ध में जब हज़रत अली की सेना विजय के नज़दीक पहुँच गई और इस्लामी सेना के कमांडर हज़रत मालिक-ए-अश्तर ने दुश्मन फ़ौज के नेता मुआविया को लगभग घेर लिया तो बड़ी चालाकी से सीरिया की सेना ने पवित्र कुरान की आड़ ले ली और क़ुरान की प्रतियों को भालो पर उठा कर आपसी समझोते की बात करना शुरू कर दी. अंत में शांति वार्ता के ज़रिये से युद्ध समाप्त हो गया.

हज़रत अली के प्रतिनिधि अबू मूसा अशरी के साथ धोका किये जाने के साथ ही सुलह का यह प्रयास विफ़ल हो गया और एक बार फिर जंग के शोले भड़क उठे. अबू मूसा के साथ धोका होने की वजह से हज़रत अली की सेना के सिपाहियों

द्वारा फिर से युद्ध शुरू करने के आग्रह और समझोता वार्ता से जुड़े अन्य मुद्दों को लेकर हज़रत अली के सेना का एक टुकड़ा बाग़ी हो गया. इस बाग़ी सेना से हज़रत अली को नहर-वान नामक स्थान पर जंग करनी पड़ी. हज़रत अली से टकराने के कारण इस दल को इस्लामी इसिहास मे खारजी(निष्कासित) की संज्ञा दी गई है.

हज़रत अली की सेना में फूट और मुआविया के साथ शांति वार्ता नाकाम होने के बाद सीरिया में मुआविया ने सामानांतर सरकार बना ली. इन लडाइयों के नतीजे मैं मुस्लिम समाज चार भागो में बंट गया. एक वर्ग हज़रत अली को हर तरह से हक़ पर समझता था. इस वर्ग को शिया आने अली कहा जाता है. यह वर्ग इमामत पर यकीन रखता है और हज़रत अली से पहले के तीन खलीफाओं को मान्यता नहीं देता है. दूसरा वर्ग मुआविया की हरकातो को उचित करत देता था. इस ग्रुप को मुआविया का मित्र कहा जाता है. यह वर्ग मुआविया और यजीद को इस्लामी ख़लीफ़ा मानता है. तीसरा वर्ग ऐसा है जो कि मुआविया और हज़रत अली दोनों को ही अपनी जगह पर सही क़रार देता है और दोनों के बीच हुई जंग को ग़लतफ़हमी का नतीजा मानता है, इस वर्ग को सुन्नी कहा जाता है(लेकिन इस वर्ग

ने भी मुआविया को अपना खलीफा नहीं माना). चौथे ग्रुप की नज़र में…… …….

हज़रत अली की सेनाओं को कमज़ोर पाकर मुआविया ने मिश्र में भी अपनी सेनाएं भेज कर वह के गवर्नर मोहम्मद बिन अबू बक़र(जो पैग़म्बरे इस्लाम (स) की पत्नी हज़रत आयशा के छोटे भाई और पहले खलीफा अबू बक़र के बेटे थे) को गिरफ्तार कर लिया और बाद में उनको गधे की खाल में सिलवा कर ज़िन्दा जलवा दिया. इसी के साथ मुआविया ने हज़रत अली के शासन के तहत आने वाले गानों और देहातो में लोगो को आतंकित करना शुरू कर दिया. बेगुनाह शहरियों को केवल हज़रत अली से मोहब्बत करने के जुर्म में क़त्ल करने का सिलसिला शुरू कर दिया गया. इस्लामी इतिहास की पुस्तक अल-नसायह अल काफ़िया में हज़रत अली के मित्रो को आतंकित करने की घटनाओं का बयान इन शब्दों में किया गया है: “अपने गुर्गों और सहयोगियों की मदद से मुआविया ने हज़रत अली के अनुयाइयों में सबसे अधिक शालीन और श्रेष्ट व्यक्तियों के सर कटवा कर उन्हें भालों पर चढ़ा कर अनेक शहरो में घुमवाया. “इस युग में ज़्यादातर लोगों को हज़रत अली के प्रति घृणा प्रकट करने के लिए मजबूर किया जाता अगर वो ऐसा करने के इनकार करते तो उनको क़त्ल कर दिया जाता।

हज़रात अली की शहादत

अपनी जनता को इस आतंकवाद से छुटकारा दिलाने के लिए हज़रत अली ने फिर से इस्लामी सेना को संगठित करना शुरू किया. हज़रत इमाम हुसैन, क़ेस बिन सअद और अबू अय्यूब अंसारी को दस दस हज़ार सिपाहियों की कमान सोंपी गई और खुद हज़रत अली के अधीन 29 हज़ार सैनिक थे और जल्द ही वो मुआविया की सेना पर हमला करने वाले थे, लेकिन इस के पहले कि हज़रत अली मुआविया पर हमला करते, एक हत्यारे अब्दुल रहमान इब्ने मुल्ज़िम ने हिजरत के 40वें वर्ष में पवित्र रमज़ान की 18वी तारीख़ को हज़रत अली कि गर्दन पर ज़हर में बुझी तलवार से उस समय हमला कर दिया जब वो कूफ़ा नगर की मुख्य मस्जिद में सुबह की नमाज़ का नेतृत्व(इमामत) कर रहे थे और सजदे की अवस्था में थे. इस घातक हमले के तीसरे दिन यानी 21 रमज़ान (28 जनवरी 661 ई०) में हज़रत अली शहीद हो गए. इस दुनिया से जाते वक़्त उनके होटों पर यही वाक्य था कि “रब्बे क़ाबा(अल्लाह) कि कसम, में कामयाब हो गया” . अपनी ज़िन्दगी में उन्होंने कई लड़ाइयाँ जीतीं. बड़े-बड़े शूरवीर और बहादुर योद्धा उनके हाथ से मारे गए मगर उन्होंने कभी भी अपनी कामयाबी का दावा नहीं किया. हज़रत अली की नज़र में अल्लाह कि राह मैं शहीद हो जाना और एक मज़लूम की

मौत पाना सब से बड़ी कामयाबी थी. लेकिन जंग के मैदान में उनको शहीद करना किसी भी सूरमा के लिए मुमकिन नहीं था. शायद इसी लिए वो अपनी इस क़ामयाबी का ऐलान कर के दुनिया को बताना चाहते थे कि उन्हें शहादत भी मिली और कोई सामने से वार करके उन्हें क़त्ल भी नहीं कर सका. वे पहले ऐसे व्यक्ति हैं जो क़ाबा के पावन भवन के अन्दर पैदा हुए और मस्जिद में शहीद हुए।

हज़रत अली ने अपने शासनकाल में न तो किसी देश पर हमला किया न ही राज्य के विस्तार का सपना देखा. बल्कि अपनी जनता को सुख सुविधाएँ देने की कोशिश में ही अपनी सारी ज़िन्दगी कुर्बान कर दी थी. वो एक शासक की तरह नहीं बल्कि एक सेवक की तरह ग़रीबों, विधवा औरतों और अनाथ बच्चों तक सहायता पहुँचाते थे. उनसे पहले न तो कोई ऐसा शासक हुआ जो अपनी पीठ पर अनाज की बोरियाँ लादकर लोगों तक पहुँचाता हो न उनके बाद किसी शासक ने खुद को जनता की खिदमत करने वाला समझा।

हज़रत अली के बाद उनके बड़े बेटे हज़रत इमाम हसन ने सत्ता संभाली, लेकिन अमीर मुआविया की और से उनको भी चैन से बेठने नहीं दिया गया. इमाम हसन

के अनेक साथियों को आर्थिक फ़ायदों और ऊँचे पदों का लालच देकर मुआविया ने हज़रत हसन को ख़लीफ़ा के पद से अपदस्थ करने में कामयाबी हासिल कर ली. हज़रत हसन ने सत्ता छोड़ने से पहले अमीर मुआविया के साथ एक समझौता किया।

26 जुलाई 661ई० को इमाम हसन और अमीर मुआविया के बीच एक संधि हुई जिसमें यह तय हुआ:

)1) मुआविया की तरफ से धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं होगा।

(2) हज़रत अली के साथियों को सुरक्षा प्रदान की जाएगा।

(3) मुआविया को मरते वक़्त अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करने का अधिकार नहीं होगा।

(4) मुआविया की मौत के बाद ख़िलाफ़त(सत्ता) पैग़म्बरे इस्लाम (स) के परिवार के किसी विशिष्ट व्यक्ति को सौंप दी जायेगी।

समझोते का एहतराम करने के स्थान पर मुआविया की और से पवित्र पैग़म्बरे इस्लाम (स) के परिवार के सदस्यों और हज़रत अली के चाहने वालों को प्रताड़ित करना शुरू कर दिया गया. इसी नापाक अभियान की एक कड़ी के रूप में इमाम हसन को केवल 47 वर्ष की उम्र में एक महिला के ज़रिये ज़हर दिलवा कर शहीद कर दिया गया।

अमीर मुआविया ने इमाम हसन के साथ की गई संधि को अपने मतलब के लिए इस्तेमाल करने के बाद इस को रद्दी की टोकरी में डाल कर अपने परिवार का शासन स्थापित कर दिया. मुआविया को अपने खानदान का राज्य स्थापित करने में तो कामयाबी मिल गई लेकिन मुआविया का खलीफा बनने का सपना पूरा नहीं हो सका. मुआविया ने लगभग 12 वर्ष राज किया और जिहाद के नाम पर दूसरे देशों पर हमला करने का काम शुरू करके जिहाद जैसे पवित्र काम को बदनाम करना शुरू किया. इस के अलावा मुआविया ने इस्लामी आदर्शों से खिलवाड़ करते हुए एक ऐसी परंपरा शुरू की जिसकी मिसाल नहीं मिलती. इस नजिस पॉलिसी के तहत उस ने हज़रत अली और उनके परिवार जनों को गालियाँ देने के लिए मुल्ला किराए पर रखे. अमीर मुआविया ने अपने जीवन की सबसे

बड़ी ग़लती यह की कि अपने जीवन में ही अपने कपूत यज़ीद को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

इन सब हरकतों का नतीजा यह हुआ की समस्त मुसलामानों ने ख़िलाफ़त के सिलसिले को समाप्त मान कर इमाम हसन के बाद खिलाफत-ए-राशिदा(सही रास्ते पर चलने वाले शासकों) के ख़त्म हो जाने का ऐलान कर दिया. इस तरह मुआविया को सत्ता तो मिल गई लेकिन मुसलामानों का भरोसा हासिल नहीं हो सका।

यजीद की सत्ता

अमीर मुआविया ने अपने क़बीले बनी उमय्या का शासन स्थापित करने के साथ साथ उस इस्लामी शासन प्रणाली को भी समाप्त कर दिया जिसमें ख़लीफ़ा एक आम आदमी के जैसी ज़िन्दगी बिताता था। मुआविया ने ख़िलाफ़त को राज शाही में तब्दील कर दिया और अपने कुकर्मी और दुराचारी बेटे यज़ीद को अपना

उत्तराधिकारी घोषित करके उमय्या क़बीले के अरबों और दूसरे मुसलामानों पर राज्य करने के पुराने ख्वाब को पूरा करने की ठान ली।

मुआविया को जब लगा कि मौत क़रीब है तो यज़ीद को सत्ता पर बैठाने के लिए अहम् मुस्लिम नेताओं से यज़ीद कि बैयत(मान्यता देने) को कहा।

यज़ीद को एक इस्लामी शासक के रूप में मान्यता देने का मतलब था इस्लामी आदर्शों की तबाही और बर्बादी. यज़ीद जैसे कुकर्मी, बलात्कारी, शराबी और बदमाश को मान्यता देने का सवाल आया तो सब से पहले इस पर लात मारी पैग़म्बरे इस्लाम (स) के प्यारे नवासे और हज़रत अली (अ) के शेर दिल बेटे इमाम हुसैन (अ) ने कहा कि वह अपनी जान क़ुर्बान कर सकते हैं लेकिन यज़ीद जैसे इंसान को इस्लामिक शासक के रूप में क़ुबूल नहीं कर सकते।

इमाम हुसैन के अतिरिक्त पैगम्बर साहब की पत्नी हज़रात आयशा ने भी यज़ीद को मान्यता देने से इनकार कर दिया। कुछ और लोग जिन्होंने यज़ीद को मान्यता देने से इनकार किया वो हैं: अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर, 2. अब्दुल्लाह बिन उमर, 3

उब्दुल रहमान बिन अबू बकर, 4, अब्दुल्लाह इब्ने अब्बास. इनके आलावा अब्दुल रहमान बिन खालिद इब्ने वलीद और सईद बिन उस्मान ने भी यज़ीद की बैअत से इनकार किया लेकिन इनमें से अब्दुल रहमान को ज़हर देकर मार डाला गया और सईद बिन उस्मान को खुरासान(ईरान के एक प्रान्त) का गवर्नर बना कर शांत कर लिया गया।

मुआविया की नज़र में इन सारे विरोधियों का कोई महत्व नहीं था उसे केवल इमाम हुसैन (अ) की फ़िक्र थी कि अगर वे राज़ी हो जाएँ तो यज़ीद की ख़िलाफ़त के लिए रास्ता साफ़ हो जाएगा। मुआविया ने अपने जीवन में इमाम हुसैन (अ) पर बहुत दबाव डाला कि वो यज़ीद को शासक मान लें मगर उसे सफ़लता नहीं मिली।

यज़ीद का परिचय

यज़ीद बनी उमय्या के उस कबीले का कपूत था, जिस ने पैग़म्बरे इस्लाम (स) को जीवन भर सताया. इसी क़बीले के सरदार और यज़ीद के दादा अबू सूफ़ियान ने कई बार हज़रत मोहम्मद (स) की जान लेने की कौशिश की थी और मदीने में रह रहे पैग़म्बरे इस्लाम (स) पर कई हमले किये थे. यज़ीद के बारे में कुछ इतिहासकारों की राय इस प्रकार है:

तारीख-उल-खुलफ़ा में जलाल-उद-दीन सियोती ने लिखा है की “यज़ीद अपने पिता के हरम में रह चुकी दासियों के साथ दुष्कर्म करता था। जबकि इस्लामी कानून के तहत रिश्ते में वे दासियाँ उसकी माँ के समान थीं।

सवाअक-ए-महरका में अब्दुल्लाह बिन हन्ज़ला ने लिखा है की “यज़ीद के दौर में हम को यह यकीन हो चला था की अब आसमान से तीर बरसेंगे क्योंकि यज़ीद ऐसा व्यक्ति था जो अपनी सौतेली माताओं, बहनों और बेटियों तक को नहीं छोड़ता था. शराब खुले आम पीता था और नमाज़ नहीं पढता था.”

जस्टिस अमीर अली लिखते हैं कि “यज़ीद ज़ालिम और ग़द्दार दोनों था उसके चरित्र में रहम और इंसाफ़ नाम की कोई चीज़ नहीं थी” .

एडवर्ड ब्रा ने हिस्ट्री और पर्शिया में लिखा है कि “यज़ीद ने एक बददु(अरब आदिवासी) माँ की कोख से जन्म लिया था। रेगिस्तान के खुले वातावरण में उस की परवरिश हुई थी, वह बड़ा शिकारी, आशिक़, शराब का रसिया, नाच गाने का शौकीन और मज़हब से कोसो दूर था.”

अल्लामा राशिद-उल-खैरी ने लिखा है कि “यज़ीद गद्दी पर बेठने के बाद शराब बड़ी मात्रा में पीने लगा और कोई पल ऐसा नहीं जाता था कि जब वह नशे में धुत न रहता हो और जिन औरतों से पवित्र कुरान ने निकाह करने को मना किया था, उनसे निकाह को जायज़ समझता था.”

ज़ाहिर है इमाम हुसैन (अ) यज़ीद जैसे अत्याचारी, कुकर्मी, बलात्कारी, शराबी और अधर्मी को मान्यता कैसे दे सकते थे। यजीद ने अपने चचाज़ाद भाई वलीद

बिन अत्बा को जो मदीने का गवर्नर था यह सन्देश भेजा कि वह मदीने में रह रहे इमाम हुसैन, इब्ने उमर और इब्ने ज़ुबैर से उसके लिए बैयत (मान्यता) की मांग करे और अगर तीनों इनकार करें तो उनके सर काट कर यज़ीद के दरबार में भेजें।

इमाम हुसैन (अ) की हिजरत:

वलीद ने इमाम हुसैन (अ) को संदेसा भेजा कि वह दरबार में आयें उनके लिए यज़ीद का एक ज़रूरी पैग़ाम है। इमाम हुसैन (अ) उस समय अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर के साथ मस्जिद-ए-नबवी में बेठे थे।

जब यह सन्देश आया तो इमाम से इब्ने ज़ुबैर ने कहा कि इस समय इस प्रकार का पैग़ाम आने का मतलब क्या हो सकता है? इमाम हुसैन (अ) ने कहा कि लगता है कि मुआविया कि मौत हो गई है और शायद यज़ीद की बैयत के लिए वलीद ने हमें बुलाया है। इब्ने ज़ुबैर ने कहा कि इस समय वलीद के दरबार में जाना आपके लिए ख़तरनाक हो सकता है। इमाम ने कहा कि में जाऊँगा तो ज़रूर लेकिन अपनी सुरक्षा का प्रबंध करके वलीद से मिलूँगा। खुद अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर रातों रात मक्के चले गए।

इमाम अपने घर आये और अपने साथ घर के जवानों को लेकर वलीद के दरबार में पहुँच गए। लेकिन अपने साथ आये बनी हाशिम के(जोशीले और इमाम पर हर वक़्त मर मिटने के लिए तैयार रहने वाले) जवानों से कहा कि वे लोग बाहर ही ठहरे और अगर इमाम की आवाज़ बुलंद हो तो अन्दर आ जाएँ।

इमाम दरबार में गए तो उस समय वलीद के साथ मर-वान भी बैठा था जो पैग़म्बरे इस्लाम (स) के परिवार वालों का पुराना दुश्मन था। जब इमाम हुसैन (अ) आये तो वलीद ने मुआविया की मौत कि ख़बर देने के बाद यज़ीद की बैयत के लिए कहा। इमाम हुसैन (अ) ने यज़ीद की बैयत करने से साफ़ इनकार कर दिया और वापस जाने लगे तो पास बैठे हुए मर-वान ने कहा कि अगर तूने इस वक़्त हुसैन को जाने दिया तो फिर ऐसा मौक़ा नहीं मिलेगा यही अच्छा होगा कि इनको गिरफ़्तार करके बैयत ले ले या फिर क़तल कर के इनका सर यज़ीद के पास भेज दे। यह सुनकर इमाम हुसैन (अ) को ग़ुस्सा आ गया और वह चीख़ कर बोले “भला तेरी या वलीद कि यह मजाल कि मुझे क़त्ल कर सकें?” इमाम हुसैन (अ) की आवाज़ बुलंद होते ही उनके छोटे भाई हज़रत अब्बास के नेतृत्व मैं बनी हाशिम के जवान तलवारें उठाये दरबार में दाखिल हो गए लेकिन इमाम ने इन नौजवानों

के जज़्बात पर काबू पाया और घर वापस आ कर मदीना छोड़ने के बारे में मशविरा करने लगे।

बनी हाशिम के मोहल्ले में इस खबर से शोक का माहौल छा गया। इमाम हुसैन (अ) अपने खानदान के लोगों को साथ लेकर मदीने का पवित्र नगर छोड़ कर मक्का स्थित पवित्र काबे की और प्रस्थान कर गए जिसको अल्लाह ने इतना पाक करार दिया है कि वहां किसी जानवर का खून बहाने कि भी इजाज़त नहीं है।

मक्का पहुँचने के बाद लगभग साढ़े चार महीने इमाम अपने परिवार सहित पवित्र काबा के निकट रहे लेकिन हज का ज़माना आते ही इमाम को सूचना मिली कि यज़ीद ने हाजियों के भेस में एक दल भेजा है जो इमाम को हज के दौरान क़त्ल कर देगा। वैसे तो हज के दौरान हथियार रखना हराम है और एक चींटी भी मर जाए तो इंसान पर कफ्फ़ारा(प्रायश्चित) अनिवार्य हो जाता है लेकिन यज़ीद के लिए इस्लामी उसूल या काएदे कानून क्या मायने रखते थे?

इमाम ने हज के दौरान खून खराबे को टालने के लिए हज से केवल एक दिन पहले मक्का को छोड़ने का फैसला कर लिया।

कर्बला में धर्म और अधर्म का टकराव:

इमाम हुसैन (अ) ने मक्का छोड़ने से पहले अपने चचेरे भाई हज़रत मुस्लिम को इराक के कूफ़ा नगर में भेज दिया था ताकि वह कूफे के असली हालात का पता लगाएँ। कूफा जो कि किसी समय में हज़रत अली कि राजधानी था, वहां भी यज़ीद के शासन के खिलाफ क्रांति की चिंगारियां फूटने लगी थीं। कूफ़े से लगातार आग्रह पत्र इमाम हुसैन (अ) के नाम आ रहे थे कि वह यज़ीद के खिलाफ चल रहे अभीयान का नेतृत्व करें।

कूफ़े मैं इमाम हुसैन (अ) के भाई का बड़ा भव्य स्वागत हुआ और लगभग एक लाख लोगों ने इमाम हुसैन (अ) के प्रति अपनी वफादारी कि शपथ ली यह खबर सुन कर यज़ीद गुस्से से पागल हो गया और कूफ़े के गवर्नर नोअमान बिन बशीर के स्थान पर यज़ीद ने कूफ़े में उबैद उल्लाह इब्ने ज़ियाद नामक सरदार को

गवर्नर बना कर भेजा। इब्ने ज़ियाद हज़रत अली के परिवार का पुश्तैनी दुश्मन था। उसके कूफ़े में पहुँचते ही आतंक फ़ैल गया। कूफ़े के लोग यज़ीद की ताकत और सैन्य बल के आगे सारी वफ़ादारी भूल गए। इब्ने ज़ियाद ने इमाम हुसैन (अ) से वफ़ादारी व्यक्त करने वाले ओगों को चुन चुन कर मार डाला या गिरफ्तार करके सख्त यातनाएं दिन। उसने हज़रत मुस्लिम बिन अक़ील को बेदर्दी से क़त्ल करके उनकी लाश के पाँव में रस्सी बाँध कर कूफ़े की गली कूचों में घसीटे जाने का आदेश भी दिया। यही नहीं हज़रत मुस्लिम के साथ में गए हुए दो मासूम बच्चों, आठ साल के मोहम्मद और छे साल के इब्राहीम की भी निर्मम रूप से हत्या कर दी गई। बच्चो को शहीद करने की यह पहली आतंकवादी घटना थी।

इमाम हुसैन (अ) का क़ाफ़िला लगातार आगे बढ़ता रहा और रास्ते में ही उन्हें हज़रत मुस्लिम और उनके बच्चो कि शहादत की ख़बर मिली। उधर यज़ीद की सेनाएं भी लगातार इमाम हुसैन (अ) के उस कारवान क़ा पीछा कर रहीं थीं जिसमें लगभग साठ-सत्तर पुरुष, कुछ बच्चे और चंद औरतें शामिल थीं।

हुर्र का आना

ज़ुहसम नाम के एक स्थान पर इमाम हुसैन (अ) क़ा सामना यज़ीद की फ़ौज के पहले दस्ते से हुआ। लगभग एक हज़ार फ़ौजियों के इस दस्ते क़ा सेनापति हुर्र बिन रियाही नाम क़ा अधिकारी कर रहा था। जब हुर्र की सैनिक टुकड़ी इमाम के सामने आई तो रेगिस्तान में भटकने के कारण सैनिकों क़ा प्यास के मारे बुरा हाल था। इमाम हुसैन (अ) ने इस बात क़ा ख़्याल किए बग़ैर कि यह दुश्मन के सिपाही हैं इस प्यासे दस्ते को पानी पिलाया और मानवता के नए कीर्तिमान क़ायम किये। अगर इमाम हुसैन (अ) हुर्र के सिपाहियों को पानी न पिलाते तो इस सैनिक टुकड़ी के सभी लोग प्यास से मर सकते थे और इमाम हुसैन (अ) के दुश्मनों में कमी हो जाती, लेकिन इमाम हुसैन (अ) उस पैग़म्बर के नवासे थे जो अपने दुश्मनों की तबियत खराब होने पर उनका हाल चाल पूछने के लिए उसके घर पहुँच जाते थे।

2 मौहर्रम

लगभग 22 दिन तक रेगिस्तान की यात्रा करने के बाद इमाम हुसैन (अ) क़ा काफ़िला (2 अक्तूबर 680 ई० या 2 मुहर्रम 61 हिजरी) इराक़ के उस स्थान पर पहुँचा, जिसको क़र्बला कहा जाता है। हुर्र की सैनिक टुकड़ी भी इमाम के पीछे पीछे

कर्बला में आ चुकी थी। इमाम के यहाँ पड़ाव डालते ही यज़ीद की फौजें हज़ारों कि संख्या में पहुँचने लगीं। यज़ीदी सेनाओं ने सब से पहले फ़ुरात नदी(अलक़मा नहर) के किनारे से इमाम को अपने शिविर हटाने को बाध्य किया और इस तरह अपने नापाक इरादों क़ा आभास दे दिया।

7 मौहर्रम

पांच दिन बाद यानी सात मुहर्रम को नदी के अहातों (किनारों) पर पहरा लगा दिया गया और इमाम हुसैन (अ) के परिवार जनों और साथियों के नदी से पानी लेने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। रेगिस्तान की झुलसा देने वाली गर्मी में पानी बंद होने से इमाम हुसैन (अ) के बच्चे प्यास से तड़पने लगे। दो दिन बाद अचानक यज़ीदी सेनाओं ने इमाम के क़ाफिले पर हमला कर दिया। इमाम हुसैन (अ) ने यज़ीदी सेना से एक रात की मोहलत मांगी ताकि वह अपने मालिक की इबादत कर सकें। यज़ीदी सेना राज़ी हो गई क्योंकि उसे मालूम था कि यहाँ से अब इमाम और उनके साथी कहीं नहीं जा सकते और एक दिन की और प्यास से उनकी शारीरिक और मानसिक दशा और भी कमज़ोर हो जायेगी।

शबे आशूर

रात भर इमाम, उनके परिवार-जन और उनके साथी अल्लाह कि इबादत करते रहे। इसी बीच इमाम ने तमाम रिश्तेदारों और साथियों को एक शिविर में इकठ्ठा होने के लिए कहा और इस शिविर में अँधेरा करने के बाद सब से कहा कि: “तमाम तारीफ़ें खुदा के लिए हैं। मैं दुनिया में किसी के साथियों को इतना जाँबाज़ वफादार नहीं समझता जितना कि मेरे साथी हैं और न दुनिया में किसी को ऐसे रिश्तेदार मिले जैसे नेक और वफ़ादार मेरे रिश्तेदार हैं। खुदा तुम्हें अज्र-ए-अज़ीम(अच्छा फल) देगा। आगाह हो जाओ कि कल दुश्मन जंग ज़रूर करेगा। मैं तुम्हें ख़ुशी से इजाज़त देता हूँ कि तुम्हारा दिल जहाँ चाहे चले जाओ, मैं हरगिज़ तुम्हें नहीं रोकूंगा। शामी (यजीदी सेना) केवल मेरे खून की प्यासी है। अगर वह मुझे पा लेंगे तो तुम्हें को तलाश नहीं करेंगे” । इसके बाद इमाम ने सारे चिराग़ भुझाने को कहा और बोले इस अँधेरे मैं जिसका दिल जहाँ चाहे चला जाए। तुम लोगों ने मेरे प्रति वफ़ादार रहने कि जो क़सम खाई थी वह भी मैंने तुम पर से उठा ली है।” इस घटना पर टिप्पड़ी करते हुए मुंशी प्रेम चंद ने लिखा है कि अगर कोई सेनापति आज अपनी फ़ौज से यही बात कहे तो कोई सिपाही तो क्या बड़े बड़े कप्तान और जर्नल घर कि राह लेते हुए नज़र आयें। मगर कर्बला में हर तरह से मौका देने पर भी इमाम का साथ छोड़ने पर कोई राज़ी नहीं हुआ। ज़ुहैन इब्ने क़ेन जैसा भूढ़ा सहाबी कहता है कि “ऐ इमाम अगर मुझको इसका यकीन हो

जाए कि मै आपकी तरफ़दारी करने की वजह से ज़िन्दा जलाया जाऊँगा, और फिर ज़िन्दा करके जलाया जाऊं तो यह काम अगर 100 बार भी करना पड़े तो भी में आपसे अलग नहीं हो सकता।

रिश्तेदार तो पहले ही कह चुके थे कि “हम आप को इस लिए छोड़ दें की आपके बाद जिंदा रहे? हरगिज़ नहीं, खुदा हम को ऐसा बुरा दिन दिखाना नसीब न करे।

फिर इमाम ने अपने चाचा हज़रत अक़ील की औलाद से यह आग्रह किया कि वह वापस चले जाएँ क्योंकि उनके लिए हज़रत मुस्लिम बिन अक़ील का ग़म अभी ताज़ा है और इस दुखी परिवार पर वह और ज़्यादा ग़म नहीं डालना चाहते लेकिन औलादें हज़रत अक़ील ने कह दिया कि वह अपनी जानें कुर्बान करके ही दम लेंगे।

हालांकि सब को पता था कि यज़ीद की सेनाएं हज़ारों की तादाद में हैं और 70 सिपाहियों (हज़रत हुर्र और उनके बेटे के शामिल होने के बाद यह तादाद बाद में 72 हो गई) की यह मामूली सी टुकड़ी शहादत के आलावा कुछ हासिल नहीं कर

सकतीं लेकिन इमाम को छोड़ने पर कोई राज़ी न हुआ। यह लोग दुनिया को जिहाद का असली मतलब बताना चाहते थे ताकि क़यामत तक कोई यह न कह सके कि जिहाद किसी का बेवजह खून बहाने का नाम नहीं है या किसी देश पर चढाई करने का नाम नहीं हैं।

10 मौहर्रम

दूसरे दिन मुहर्रम की दसवीं तारीख़ थी। हुसैनी सिपाही रात भर की इबादत के बाद सुबह के इन्तिज़ार में थे कि यज़ीद की सेना से दो सितारे उभरे और लश्करे हुसैन की रौशनी में समां गए। यह हुर इब्ने रियाही थे जो अपने बेटे के साथ इमाम की पनाह में आये थे। जिस हुर को इमाम ने रास्ते में पानी पिलाया था आज वही हुर उस घडी में इमाम के लश्कर में शामिल होने आया था जबकि इमाम हुसैन (अ) के छोटे छोटे बच्चे पानी की बूँद बूँद को तरस रहे थे। हुर को मालूम था कि इमाम हुसैन (अ) की 72 सिपाहियों की एक छोटी सी टुकड़ी यज़ीद की शक्तिशाली सेना(जिसकी संख्या विभिन्न इतिहासकारों ने तीस हज़ार से एक लाख तक बताई है) से जीत नहीं सकती थी, फिर भी दिल की आवाज़ पर हुर उस दल में शामिल हो कर हुर से हज़रते हुर बन गए। मौत और ज़िन्दगी की इस कड़ी मंजिल में बड़ों बड़ों के क़दम लड़खड़ा जाते हैं और आम आदमी जिंदा रहने का बहाना ढूँढता है मगर मौत को अपनी मर्ज़ी से गले लगाने वाले हुर जैसे लोग मरते नहीं शहीद होते हैं।

हज़रत हुर्र के आने के बाद यज़ीदी लश्कर से तीरों की बारिश शुरू हो गई। पहले इमाम हुसैन (अ) के मित्रों और दोस्तों ने रणभूमि में अपनी बहादुरी और वीरता के जौहर दिखाये। इमाम के इन चाहने वालों में नवयुवक भी थे और बूढ़े भी, पैसे वाले रईस भी थे, ग़ुलाम और सेवक भी। अफ्रीका के काले रंग वाले जानिसार भी थे तो एक से एक खूबसूरत सुर्ख-ओ-सफ़ेद रंग वाले गबरू जवान भी। इनमें उम्र का फ़र्क़ था, रंग-ओ-नस्ल का फ़र्क़ था सामाजिक और आर्थिक भिन्नता थी मगर उनके दिलों में इमाम हुसैन (अ) की मोहब्बत, उन पर जान लुटा देने का हौसला और इस्लाम को बचने के लिए अपने को कुर्बान कर देने का जज़्बा एक जैसा था।

जब सारे साथी और मित्र अपनी कुर्बानी दे चुके तो इमाम हुसैन (अ) के रिश्तेदारों ने अपने इस्लाम को बचाने वाले के लिए अपने प्राण निछावर करना शुरू कर दिए। कभी उनकी बहनों और माँओ ने तलवारें सजा कर मैदान में भेजा। कभी उनके भतीजे रणभूमि में अपने चाचा पर मर मिटने के लिए उतरे तो कभी भाई ने नदी के किनारे अपने बाजू कटवाए और कभी उनके 18 साल के कड़ियल जवान अली अकबर ने अपनी कुर्बानी पेश की। आखिर में हुसैन के हाथों पर उनके छे महीने के बच्चे अली असग़र ने गले पर तीर खाया और सब से आखिर में अल्लाह के सब से प्यारे बन्दे के प्यारे नवासे ने कर्बला की जलती हुई धरती पर तीन दिन

की प्यास में जालिमों के खंजर तले खुदा के लिए सजदा करके अपनी कुर्बानी पेश की। यही नहीं तथाकथित मुसलामानों ने अपने ही पैग़म्बर के नवासे की लाश पर घोड़े दौड़ा कर अपने बदले की आग बुझाई।

इमाम हुसैन (अ) के साथ शहीद होने वाले कुछ ख़ास रिश्तेदार और साथी:

अबुल फ़ज़लिल अब्बास: कर्बला में इमाम हुसैन (अ) की छोटी सी सेना का नेतृत्व हज़रत अब्बास के हाथों मैं था. वह इमाम हुसैन (अ) के छोटे भाई थे. इमाम हुसैन (अ) की माँ हज़रत फ़ातिमा (स) के निधन के बाद हज़रत अली (अ) ने अपने भाई हज़रत अक़ील से कहा की में किसी ऐसे खानदान की लड़की से शादी करना चाहता हूँ जो अरब के बड़े बहादुरों में शुमार होता हो, जिससे की बहादुर और जंग-आज़मा(युद्ध में निपुण) औलाद पैदा हो. हज़रत अक़ील ने कहा की उम-उल-बनीन-ए-कलाबिया से शादी कीजिए. उनके बाप दादा से ज़्यादा कोई मशहूर सारे अरब में नहीं है. हज़रत अली (अ) ने इसी तथ्य की बुनियाद पर जनाबे उम-उल-बनीन से शादी की और उनसे चार बेटे पैदा हुए. हज़रत अब्बास उनमें सबसे बड़े थे. वह इमाम हुसैन (अ) को बेहद चाहते थे और इमाम हुसैन (अ)

को हज़रत अब्बास से बेहद मोहब्बत थी. कर्बला की जंग में हज़रत अब्बास के हाथों में ही इस्लामी सेना का अलम(ध्वज) था. इसी लिए उन्हें अलमदार-ए-हुसैनी कहा जाता है. उनकी बहादुरी सारे अरब में मशहूर थी. कर्बला की जंग में हालांकि वह प्यासे थे लेकिन एक मौक़ा ऐसा आया की इमाम हुसैन (अ) की सेना के चार सिपाहियों का मैदान में यज़ीदी सेना ने चारों तरफ से घेर लिया तो उनको बचाने के लिए हज़रत अब्बास मैदान में गए और सारे लश्कर को मार भगाया और चारों को बाहर निकाला. इतने बड़े लश्कर से टकराने के बाद भी हज़रत अब्बास के बदन पर एक भी ज़ख्म नहीं लगा. उनकी बहादुरी का यह आलम था की जब इमाम हुसैन (अ) के सारे सिपाही शहीद हो गए तो खुद हज़रत अब्बास ने जिहाद करने के लिए मैदान में जाने की इजाज़त माँगी, इस पर इमाम हुसैन (अ) ने कहा कि अगर मैदान में जाना ही है तो प्यासे बच्चों के लिए पानी का इन्तिज़ाम करो. हज़रत अब्बास इमाम हुसैन (अ) की सब से छोटी बेटी सकीना जो 4 साल की थीं, को अपने बच्चों से भी ज़्यादा चाहते थे और जनाबे सकीना का प्यास के मारे बुरा हाल था. ऐसे में हज़रत अब्बास ने एक हाथ में अलम लिया और दूसरे हाथ में मश्क़ ली और दुश्मन की फौज़ पर इस तरह हमला नहीं किया कि लड़ाई के लिए बढ़ रहे हों बल्कि इस तरह आगे बढे जैसे की नदी की तरफ जाने के लिए रास्ता बना रहे हों. हज़रत अब्बास से शाम और कूफ़ा की सेनायें इस तरह डर कर भागीं जैसे की शेर को देख कर भेड़ बकरियां भागती हैं. हज़रत अब्बास इत्मिनान से

नदी पर पहुँचे, मश्क़ में पानी भरा और जब नदी से वापस लौटने लगे तो भागी हुई फ़ौजें फिर से जमा हों गईं और सब ने हज़रत अब्बास को घेर लिया. हज़रत अब्बास हर हाल में पानी से भरी मश्क़ इमाम के शिविर तक पहुँचाना चाहते थे. वह फ़ौजों को खदेड़ते हुए आगे बढ़ते रहे तभी पीछे से एक ज़ालिम ने हमला करके उनका एक हाथ काट दिया. अभी वह कुछ क़दम आगे बढे ही थे कि पीछे से वार करके उनका दूसरा हाथ भी काट दिया गया. हज़रत अब्बास ने मश्क़ अपने दांतों में दबा ली. इसी बीच एक ज़ालिम ने मश्क़ पर तीर मार कर सारा पानी ज़मीन पर बहा दिया और इस तरह इमाम के प्यासे बच्चों तक पानी पहुँचने की जो आखिरी उम्मीद थी वह भी ख़त्म हों गई. एक ज़ालिम ने हज़रत अब्बास के सर पर गुर्ज़(गदा) मारकर उन्हें शहीद कर दिया. हज़रत अब्बास को तभी से सक्का-ए-सकीना(सकीना के लिए पानी का प्रबंध करने वाले) के नाम से भी याद किया जाता है. हज़रत अब्बास बेइंतिहा खूबसूरत थे, इसलिए उनको कमर-ए-बनी हाशिम (हाशिमी कबीले का चाँद) भी कहा जाता है. सारी दुनिया में मुहर्रम के दौरान जो जुलूस उठते हैं, वह हज़रत अब्बास की ही निशानी हैं.

क़ासिम बिन हसन: हज़रत क़ासिम इमाम हुसैन (अ) के बड़े भाई इमाम हसन के बेटे थे. कर्बला के युद्ध के समय उनकी उम्र लगभग तेरह साल थी. इतनी कम

उम्र में भी हज़रत क़ासिम ने इतनी हिम्मत और बहादुरी से लड़ाई की कि यज़ीदी फ़ौज के छक्के छूट गए. क़ासिम की बहादुरी देख कर उम्रो बिन साअद जैसे बड़े पहलवान को हज़रत क़ासिम जैसे कम उम्र सिपाही के सामने आना पड़ा और इस ने हज़रत क़ासिम के सर पर तलवार मार कर शहीद कर दिया. क़ासिम की शहादत का इमाम को इतना दुःख हुआ कि इमाम खुद ही तलवार लेकर अपने भतीजे के क़ातिल कि तरफ झपटे, उधर से दुश्मन कि फ़ौज वालो ने क़ातिल को बचने के लिए घोड़े दौडाए, इस कशमकश में हज़रत कासिम की लाश घोड़ो से पामाल हो गई. इमाम खुद अपने भतीजे की लाश उठाकर लाये और हज़रत अली (अ) अकबर की लाश के पास क़ासिम की लाश को रख दिया.

हज़रत औन-ओ-मोहम्मद: कर्बला की जंग में आपसी रिश्तों की जो उच्च मिसालें और आदर्श नज़र आते हैं उनमें हज़रत औन बिन जाफ़र और मोहम्मद बिन जाफ़र भी एक ऐसी मिसाल हैं जिनको रहती दुनिया तक याद किया जाता रहेगा. यह दोनों इमाम हुसैन (अ) के चचाज़ाद भाई हज़रत जाफ़र बिन अबू तालिब के बेटे थे. हज़रत औन इमाम हुसैन (अ) की चाहीती बहन हज़रत ज़ैनब के सगे बेटे थे जबकि हज़रत मोहम्मद की माँ का नाम खूसा बिन्ते हफसा बिन सक़ीफ़ था. दोनों भाइयों की देखभाल हज़रत ज़ैनब ने इस तरह की थी की लोग इन दोनों को

सगा भाई ही समझते थे. दोनों भाइयों में भी इस क़दर मोहब्बत थी की इन दोनों के नाम आज तक इतिहास की पुस्तकों में एक ही साथ लिखे जाते हैं. मजलिसों मैं औन-ओ-मोहम्मद का ज़िक्र इस प्रकार किया जाता है कि सुनने वालों को यह नाम एक ही व्यक्ति का नाम लगता है.

मदीने से जब हुसैनी क़ाफ़िला चला तो हज़रत औन-ओ-मोहम्मद साथ नहीं थे. उनके पिता हज़रत जाफ़र ने अपने दोनों नवयुवकों को इमाम हुसैन (अ) पर जान देने के लिए उस समय भेजा जब इमाम हुसैन (अ) मक्का छोड़ कर इराक की और प्रस्थान कर रहे थे. इन दोनों भाइयों ने अपने मामूं हज़रत हुसैन के मिशन को आगे बढ़ाते हुए इस्लाम के दुश्मनों से इस तरह जंग की की शाम की फ़ौज को पैर जमाए रखना मुश्किल हों गया. यह दोनों भाई आगे आने वाली नस्लों के लिए यह पैग़ाम छोड़ कर गए कि हक़ और सच्चाई की लड़ाई लड़ने वालों का चरित्र ऐसा होना चाहिए की लोग मिसालों की तरह याद करें.

अब्दुल्लाह बिन मुस्लिम बिन अक़ील:

यह इमाम हुसैन (अ) के चचाज़ाद भाई हज़रत मुस्लिम बिन अक़ील के बेटे थे. उनकी माँ इमाम हुसैन (अ) की सौतेली बहन रुक़य्या बिन्ते अली थीं. यानी अब्दुल्लाह इमाम हुसैन (अ) के भांजे भी थे और भतीजे भी. उनकी उम्र शहादत के वक़्त बहुत कम थी, शायद चार या पांच वर्ष के रहे होंगे. जब बेटे हज़रत अली (अ) अकबर की लाश इमाम हुसैन (अ) से नहीं उठ सकी और उन्होंने बनी हाशिम के बच्चों को मदद के लिए पुकारा तो अब्दुल्लाह भी ख़ेमें(शिविर) से बाहर निकल आये. इसी समय उमरो बिन सबीह सद्दाई ने अब्दुल्लाह की तरफ़ तीर चलाया जो माथे की तरफ़ आता देख कर नन्हें बच्चे ने अपने माथे पर हाथ रखा तो तीर हाथ को छेद कर माथे में लग गया. उसके बाद ज़ालिम ने दूसरा तीर मारा जो अब्दुल्लाह के सीने पर लगा और बच्चे ने मौक़े पर ही दम तौड़ दिया.

मोहम्मद बिन मुस्लिम बिन अक़ील:

यह अब्दुल्लाह के भाई थे लेकिन दोनों की माताएँ अलग अलग थीं. जैसे ही नन्हे से अब्दुल्लाह ने दम तोड़ा, हज़रत अक़ील के बेटों और पोतों ने एक साथ हमला कर दिया उनके इस जोश और ग़ुस्से को देख कर इमाम हुसैन (अ) ने

आवाज़ दी “हाँ! मेरे चाचा के बेटों मौत के अभियान पर विजय प्राप्त करो” . मोहम्मद जवाँ मर्दी से लड़ते हुए अबू मरहम नामक क़ातिल के हाथों शहीद हुए.

जाफ़र बिन अक़ील:

अब्दुल्लाह की शहादत के बात जाफ़र मैदान में उतरे. मैदाने जंग में कई दुश्मनों को मौत के घाट उतारने के बाद यह भी अल्लाह की राह में शहीद हो गए. हज़रत जाफ़र को इब्ने उर्वाह ने शहीद किया.

अब्दुल रहमान बिन अक़ील:

अब्दुल्लाह की शहादत के बाद अब्दुल रहमान बिन अक़ील ने मैदान-ए-जिहाद में अपने जोश और ईमानी जज़्बे का प्रदर्शन करते हुए दुश्मनों पर धावा बोल दिया. इन को उस्मान बिन खालिद और बशर बिन खोत ने मिल कर घेर लिया और यह बहादुर शहीद हुए.

मोहम्मद बिन अबी सईद बिन अक़ील:

अब्दुल्लाह की दिल हिला देने वाली शहादत के बाद यह भी लश्करे यज़ीद पर टूट पड़े और लक़ीत बिन यासिर नामक कातिल ने मोहम्मद के सर पर तीर मार कर शहीद किया।

अबू बक़र बिन हसन:

खानदान-ए-बनी हाशिम के जिन नौजवानों ने अपने चाचा पर अपनी जान कुर्बान की, उन में अबू बक़र बिन हसन का नाम भी सुनहरे शब्दों में लिखा है। इन को अब्दुल्लाह इब्ने अक़बा ने तीर मार कर शहीद किया।

मोहम्मद बिन अली:

यह इमाम हुसैन (अ) के भाई थे, इनकी माँ का नाम इमामाह था। कहा जाता है की इमाम हुसैन (अ) की माँ हज़रत फ़ातिमा ने अपने निधन के समय इच्छा व्यक्त की थी की हज़रत अली इमामाह इब्ने अबी आस से शादी करें। मोहम्मद ने अपने भाई इमाम हुसैन (अ) के मकसद को बचाने के लिए भरपूर जंग की और

कई दुश्मनों को मौत के घाट उतारा। बाद में बनी अबान बिन दारम नाम के एक व्यक्ति ने तीर मार कर शहीद कर दिया। इन्हें मोहम्मद उल असग़र(छोटे मोहम्मद) भी कहा जाता है।

अब्दुल्लाह बिन अली:

अब्दुल्लाह हज़रत अली और जनाबे उम उल बनीन के बेटे थे और यह हज़रत अब्बास से छोटे थे। जनाबे उम उल बनीन के क़बीले, क़बालिया से ताल्लुक रखने वाला यज़ीद का एक कमांडर भी था जिसका नाम शिम्र था। उस ने क़बीले के नाम पर इब्ने ज़ियाद से जनाबे उम उल बनीन के चारों बेटों हज़रत अब्बास, हज़रत अब्दुल्लाह, हज़रत उस्मान और जाफ़र बिन अली के नाम अमान नामा(आश्रय पत्र) लिखवा लिया था। कर्बला पहुँचने के बाद शिम्र ने सबसे पहला काम यह किया वह इमाम हुसैन (अ) के शिविर के पास आया और आवाज़ दी की कहाँ हैं मेरी बहन के बेटे? यह सुन कर हज़रत अब्बास और उनके तीनों भाई सामने आये और पूछा की क्या बात है? इस पर शिम्र ने कहा की तुम लोग मेरी अमान(आश्रय) में हो, इस पर जनाबे उम उल बनीन के बेटों ने कहा की खुदा की लानत हो तुझ पर और तेरी अमान पर। हम को तो अमान है और पैग़म्बर के नवासे को अमान नहीं। इस तरह अली के यह चारों शेर दिल बेटे यह साबित कर रहे थे की सत्य के

रास्ते में रिश्तेदारियाँ कोई मायने नहीं रखतीं और वह कर्बला में इस लिए नहीं आये हैं कि हुसैन उनके भाई हैं, बल्कि वह लोग इस लिए आये हैं कि उन्हें यकीन है कि इमाम हुसैन (अ) हक़ पर हैं। जब कर्बला का जिहाद शुरू हुआ और औलादे हज़रत अली हक़ के रास्ते में क़ुर्बान होने के लिए मैदान में उतरी तो अपने भाइयों में से हज़रत अब्बास ने सबसे पहले अब्दुल्लाह को मैदान में भेजा। हज़रत अब्दुल्लाह बिन अली मैदान में गए और वीरता से लड़ते हुए हानि बिन सबीत की तलवार से शहीद हुए।

उस्मान बिन अली:

यह अब्दुल्लाह बिन अली से छोटे थे। उस्मान बिन अली को हज़रत अब्बास ने अब्दुल्लाह की शहादत के बाद मैदान में भेजा। उस्मान बिन अली ने दुश्मन से जम कर लोहा लिया। आखिर में लड़ते लड़ते खुली बिन यज़ीद अस्बेही के तीर से शहीद हुए।

जाफ़र बिन अली:

यह उम उल बनीन के सबसे छोटे बेटे थे। उसमान बिन अली की शहादत के बाद हज़रत अब्बास ने जाफ़र से कहा की “भाई! जाओ और मैदान में जाकर हक़ परस्तों की इस जंग में अपनी जान दो ताकि जिस तरह मैंने तुम से पहले दोनों भाइयों का ग़म बर्दाश्त किया है उसी तरह तुम्हारा ग़म भी बर्दाश्त करूँ” । इसके बाद जाफ़र मैदान में गए और अपनी वीरता की गाथा अपने खून से लिख कर हानि बिन सबीत के हाथों शहीद हुए। इमाम हुसैन (अ) की सेना के आखिरी शहीद हज़रत अब्बास थे।

अली असग़र:

हज़रत अब्बास की शहादत के बाद इमाम हुसैन (अ) ने एक ऐसी कुर्बानी दी जिसकी मिसाल रहती दुनिया तक मिलना मुमकिन नहीं। इमाम अपने छह महीने के बच्चे हज़रत अली असग़र को मैदान में लाये। हज़रत अली असग़र पानी न होने के वजह से प्यास से बेहाल थे। पानी न मिलने के कारण अली असग़र की माँ जनाबे रबाब का दूध भी खुश्क हो गया था। हज़रत अली असग़र के लिए इमाम ने दुश्माओं से पानी तलब किया तो जवाब में हुर्मलाह नाम के एक मशहूर तीर अंदाज़ ने अली असग़र के गले पर तीर मार कर इस बात को साबित कर

दिया की इमाम हुसैन (अ) से टकराने वाला लश्कर अमानविये हदों से भी आगे थे। यज़ीदी सेना की राक्षसों के साथ तुलना करना राक्षसों की बेईज्ज़ती करना है क्योंकि राक्षस सेना ने जो भी कुकर्म किया हो, जितने ही ज़ुल्म क्यों न किये हों कम से कम उन्होंने छः महीने के किसी प्यासे बच्चे के गले पर तीर तो नहीं मारा होगा।

इमाम हुसैन (अ) की शहादत:

हज़रत अली असग़र की शहादत के बाद अल्लाह का एक पाक बंदा, पैग़म्बरे इस्लाम (स) का चहीता नवासा, हज़रत अली का शेर दिल बेटा, जनाबे फातिमा की गोद का पाला और हज़रत हसन के बाज़ू की ताक़त यानी हुसैन-ए-मज़लूम कर्बला के मैदान में तन्हा और अकेला खड़ा था।

इस आलम में भी चेहरे पर नूर और सूखे होंटों पर मुस्कराहट थी, खुश्क ज़ुबान में छाले पड़े होने के बावजूद दुआएँ थीं। थकी थकी पाक आँखों में अल्लाह का शुक्र था। 57 साल की उम्र में 71 अज़ीज़ों और साथियों की लाशें उठाने के बाद भी क़दमों का ठहराव कहता था की अल्लाह का यह बंदा कभी हार नहीं सकता। इमाम हुसैन (अ) शहादत के लिए तैयार हुए, खेमे में आये, अपनी छोटी बहनों जनाबे जैनब और जनाबे उम्मे कुलसूम को गले लगाया और कहा कि वह तो इम्तिहान

की आखिरी मंज़िल पर हैं और इस मंज़िल से भी वह आसानी से गुज़र जाएँगे लेकिन अभी उनके परिवार वालों को बहुत मुश्किल मंज़िलों से गुज़रना है। उसके बाद इमाम उस खेमे में गए जहाँ उनके सब से बड़े बेटे अली इब्नुल हुसैन(जिन्हें इमाम ज़ैनुल आबिदीन कहा जाता है)थे। इमाम तेज़ बुखार में बेहोशी के आलम में लेटे थे।

इमाम ने बीमार बेटे का कन्धा हिलाया और बताया की अंतिम कुर्बानी देने के लिए वह मैदान में जा रहें हैं। इस पर इमाम ज़ैनुल आबिदीन (अ) ने पूछा कि “सारे मददगार, नासिर और अज़ीज़ कहाँ गए?”। इस पर इमाम ने कहा कि सब अपनी जान लुटा चुके हैं। तब इमाम ज़ैनुल आबिदीन ने कहा कि अभी मै बाक़ी हूँ, में जिहाद करूँगा। इस पर इमाम हुसैन (अ) बोले कि बीमारों को जिहाद की अनुमति नहीं है और तुम्हें भी जिहाद की कड़ी मंजिलों से गुज़ारना है मगर तुम्हारा जिहाद दूसरी तरह का है।

इमाम खैमे से रुखसत हुए और मैदान में आये। ऐसे हाल में जब की कोई मददगार और साथी नहीं था और न ही विजय प्राप्त करने की कोई उम्मीद थी फिर भी इमाम हुसैन (अ) बढ़ बढ़ कर हमले कर रहे थे। वह शेर की तरह झपट

रहे थे और यज़ीदी फ़ौज के किराए के टट्टू अपनी जान बचाने की पनाह मांग रहे थे। किसी में इतनी हिम्मत नहीं थी की वह अकेले बढ़ कर इमाम हुसैन (अ) पर हमला करता। बड़े बड़े सूरमा दूर खड़े हो कर जान बचा कर भागने वालों का तमाशा देख रहे थे। इस हालत को देख कर यज़ीदी फ़ौज का कमांडर शिम्र चिल्लाया कि “खड़े हुए क्या देख रहे हो? इन्हें क़त्ल कर दो, खुदा करे तुम्हारी माएँ तुम्हें रोएँ, तुम्हे इसका इनाम मिलेगा” । इस के बाद सारी फ़ौज ने मिल कर चारों तरफ से हमला कर दिया। हर तरफ से तलवारों, तीरों और नैज़ों की बारिश होने लगी आखिर में सैंकड़ों ज़ख्म खाकर इमाम हुसैन (अ) घोड़े की पीठ से गिर पड़े।

इमाम जैसे ही मैदान-ए-जंग में गिरे, इमाम का क़ातिल उनका सर काटने के लिए बढ़ा। तभी खैमे से इमाम हसन का ग्यारह साल का बच्चा अब्दुल्लाह बिन हसन अपने चाचा को बचाने के लिए बढ़ा और अपने दोनों हाथ फैला दिए लेकिन कर्बला में आने वाले कातिलों के लिए बच्चों और औरतों का ख्याल करना शायद पाप था। इसलिए इस बच्चे का भी वही हश्र हुआ जो इससे पहले मैदान में आने वाले मासूमों का हुआ था। अब्दुल्लाह बिन हसन के पहले हाथ काटे गए और बाद में जब यह बच्चा इमाम हुसैन (अ) के सीने से लिपट गया तो बच्चों की जान लेने

में माहिर तीर अंदाज़ हुर्मलाह ने एक बार फिर अपना ज़लील हुनर दिखाया और इस मासूम बच्चे ने इमाम हुसैन (अ) (अ) की आग़ोश में ही दम तोड़ दिया।

फिर सैंकड़ों ज़ख्मों से घायल इमाम हुसैन (अ) का सर उनके जिस्म से जुदा करने के लिए शिम्र आगे बढ़ा और इमाम हुसैन (अ) को क़त्ल करके उसने मानवता का चिराग़ गुल कर दिया। इमाम हुसैन (अ) तो शहीद हो गए लेकिन क़यामत तक यह बात अपने खून से लिख गए कि जिहाद किसी पर हमला करने का नाम नहीं है बल्कि अपनी जान दे कर इंसानियत की हिफाज़त करने का नाम है।

शहादत के बाद:

इमाम हुसैन की शहादत के बाद यज़ीद की सेनाओं ने अमानवीय, क्रूर और बेरहम आदतों के तहत इमाम हुसैन की लाश पर घोड़े दौड़ाये। इमाम हुसैन के खेमों में आग लगा दी गई। उनके परिवार को डराने और आतंकित करने के लिए छोटे छोटे बच्चों के साथ मार पीट की गई। पैग़म्बरे इस्लाम (स) के पवित्र घराने की औरतों को क़ैदी बनाया गया, उनका सारा सामन लूट लिया गया।

इसके बाद इमाम हुसैन और उनके साथ शहीद होने वाले अज़ीज़ों और साथियों के परिवार वालों को ज़ंजीरों और रस्सियों में जकड़ कर गिरफ्तार किया गया। इस तरह इन पवित्र लोगों को अपमानित करने का सिलसिला शुरू हुआ। असल में यह उनका अपमान नहीं था, खुद यज़ीद की हार का ऐलान था।

इमाम हुसैन के परिवार को क़ैद करके पहले तो कूफ़े की गली कूचों में घुमाया गया और बाद में उन्हें कूफ़े के सरदार इब्ने ज़ियाद(इब्ने ज़ियाद यज़ीद की फ़ौज का एक सरदार था जिसे यज़ीद ने कूफ़े का गवर्नर बनाया था) के दरबार में पेश किया गया, जहाँ ख़ुशी की महफ़िलें सजाई गईं और और जीत का जश्न मनाया गया। जब इमाम हुसैन के परिवार वालों को दरबार में पेश किया गया तो इब्ने ज़ियाद ने जनाबे जैनब की तरफ इशारा करके पूछा यह औरत कौन है? तो उम्र सअद ने कहा की “यह हुसैन की बहन जैनब है” । इस पर इब्ने ज़ियाद ने कहा कि “ज़ैनब!, एक हुसैन कि ना-फ़रमानी से सारा खानदान तहस नहस हो गया। तुमने देखा किस तरह खुदा ने तुम को तुम्हारे कर्मों कि सज़ा दी” । इस पर ज़ैनब ने कहा कि “हुसैन ने जो कुछ किया खुदा और उसके हुक्म पर किया, ज़िन्दगी

हुसैन के क़दमों पर कुर्बान हो रही थी तब भी तेरा सेनापति शिम्र कोशिश कर रहा था कि हुसैन तेरे शासक यज़ीद को मान्यता दे दें। अगर हुसैन यज़ीद कि बैयत कर लेते तो यह इस्लाम के दामन पर एक दाग़ होता जो किसी के मिटाए न मिटता। हुसैन ने हक़ कि खातिर मुस्कुराते हुए अपने भरे घर को क़ुर्बान कर दिया। मगर तूने और तेरे साथियों ने बनू उमय्या के दामन पर ऐसा दाग़ लगाया जिसको मुसलमान क़यामत तक धो नहीं सकते।"

शाम

उसके बाद इमाम हुसैन की बहनों, बेटियों, विधवाओं और यतीम बच्चों को सीरिया कि राजधानी दमिश्क़, यज़ीद के दरबार में ले जाया गया। कर्बला से कूफ़े और कूफ़े से दमिश्क़ के रास्ते में इमाम हुसैन कि बहन जनाबे ज़ैनब ने रास्तों के दोनों तरफ खड़े लोगों को संबोधित करते हुए अपने भाई की मज़लूमी का ज़िक्र इस अंदाज़ में किया कि सारे अरब में क्रांति कि चिंगारियां फूटने लगीं।

यज़ीद के दरबार में पहुँचने पर सैंकड़ों दरबारियों की मौजूदगी में जब हुसैनी काफ़िले को पेश किया गया तो यज़ीद ने बनी उमय्या के मान सम्मान को फिर से

बहाल करने और जंग-ए-बद्र में हज़रत अली के हाथों मारे जाने वाले अपने काफ़िर पूर्वजों की प्रशंसा की और कहा की आज अगर जंग-ए-बद्र में मरने वाले होते तो देखते कि किस तरह मैंने इन्तिक़ाम लिया। इसके बाद यज़ीद ने इमाम ज़ैनुल आबिदीन से कहा कि "हुसैन कि ख्वाहिश थी कि मेरी हुकूमत खत्म कर दे लेकिन मैं जिंदा हूँ और उसका सर मेरे सामने है।" इस पर जनाबे ज़ैनब ने यज़ीद को टोकते हुए कहा कि तुझ को तो खुछ दिन बाद मौत भी आ जायेगी मगर शैतान आज तक जिंदा है। यह हमारे इम्तिहान कि घड़ियाँ थीं जो ख़तम हो चुकीं। तू जिस खुदा के नाम ले रहा है क्या उस के रसूल (पैग़म्बर) की औलाद पर इतने ज़ुल्म करने के बाद भी तू अपना मुंह उसको दिखा सकेगा" ।

इधर इमाम हुसैन के परिवार वाले क़ैद मैं थे और दूसरी तरफ क्रांति की चिंगारियाँ फूट रही थी और अरब के विभिन्न शहरों मैं यज़ीद के शासन के ख़िलाफ़ आवाज़ें बुलंद हो रही थी। इन सब बातों से परेशान हो कर यज़ीद के हरकारों ने पैंतरा बदल कर यह कहना शुरू कर दिया था की इमाम हुसैन का क़त्ल कूफ़ियों ने बिना यज़ीद की अनुमति के कर दिया। इन लोगों ने यह भी कहना शुरू कर दिया कि इमाम हुसैन तो यज़ीद के पास जाकर अपने मतभेद दूर करना चाहते थे या मदीने मैं लौट कर चैन की ज़िन्दगी गुज़ारना चाहते थे। लेकिन सच

तो यह है की इमाम हुसैन कर्बला के लिये बने थे और कर्बला की ज़मीन इमाम हुसैन के लिए बनी थी। इमाम हुसैन के पास दो ही रास्ते थे। पहला तो यह कि वह यज़ीद कि बैयत करके अपनी जान बचा लें और इस्लाम को अपनी आँखों के सामने दम तोड़ता देखें। दूसरा रास्ता वही था कि इमाम हुसैन अपनी, अपने बच्चों और अपने साथियों कि जान क़ुर्बान करके इस्लाम को बचा लें। ज़ाहिर है हुसैन अपने लिए चंद दिनों कि ज़िल्लत भरी ज़िन्दगी तलब कर ही नहीं सकते थे। उन्हें तो अल्लाह ने बस इस्लाम को बचाने के लिए ही भेजा था और वह इस मैं पूरी तरह कामयाब रहे।

क्रांति की आग:

कर्बला के शहीदों का लुटा काफ़िला जब दमिश्क से रिहाई पा कर मदीने वापस आया तो यहाँ क्रांति की चिंगारियाँ आग में बदल गईं और गुस्से में बिफरे लोगों ने यज़ीद के गवर्नर उस्मान बिन मोहम्मद को हटा कर अब्दुल्लाह बिन हन्ज़ला को अपना शासक बना लिया। यज़ीद ने इस क्रांति को ख़तम करने के लिए एक बहुत बड़े ज़ालिम मुस्लिम बिन अक़बा को मदीने की ओर भेजा।

मदीना वासियों ने अक़बा की सेना का मदीने से बाहर हर्रा नामक स्थान पर मुकाबला किया। इस जंग में दस हज़ार मुसलमान क़त्ल कर दिए गए ओर सात सो ऐसे लोग भी क़त्ल किये गए जो क़ुरान के हाफ़िज़ थे(जिन लोगों को पूरा क़ुरान बिना देखे याद हो, उन्हें हाफ़िज़ कहा जाता है)। मदीने के लोग यज़ीद की सेना के सामने ठहर न सके और यज़ीदी सेनाओं ने मदीने में घुस कर ऐसे कुकर्म किये कि कभी काफ़िर भी न कर सके थे। सारा शहर लूट लिया गया। हज़ारों मुसलमान लड़कियों के साथ बलात्कार किया गया, जिसके नतीजे में एक हज़ार ऐसे बच्चे पैदा हुए जिनकी माताओं के साथ बलात्कार किया गया था। मदीने के सारे शहरी इन ज़ुल्मों की वजह से फिर से यज़ीद को अपना राजा मानने लगे। इमाम ज़ैनुल आबिदीन इस हमले के दौरान मदीने के पास के एक देहात में रह रहे थे। इस मौके पर एक बार फिर इमाम हुसैन के परिवार ने एक ऐसी मिसाल पेश की कि कोई इंसान पेश नहीं कर सकता।

जब मदीने वालों ने अपना शिकंजा कसा तो उसमें मर-वान की गर्दन भी फंस गई।(मर-वान वही सरदार था जिसने मदीने मे वलीद से कहा था कि हुसैन से इसी वक़्त बैयत ले ले या उन्हें क़त्ल कर दे)। मर-वान ने इमाम ज़ैनुल-आबिदीन से पनाह मांगी और कहा कि सारा मदीना मेरे खिलाफ हो गया है, ऐसे में, मैं अपने बच्चों के लिए खतरा महसूस करता हूँ तो इमाम ने कहा की तू अपने बच्चों को

मेरे गाँव भेज दे मैं उनकी हिफाज़त का ज़िम्मेदार हूँ। इस तरह इमाम ने साबित कर दिया कि बच्चे चाहे ज़ालिम ही के क्यों न हों, पनाह दिए जाने के काबिल हैं।

मदीने को बर्बाद करने के बाद मुस्लिम बिन अक़बा मक्के की तरफ़ बढ़ा। मक्के में अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर की हुकूमत थी। लेकिन अक़बा को वक़्त ने मोहलत नहीं दी और वह मक्का के रास्ते में ही मर गया। उस की जगह हसीन बिन नुमैर ने ली और चालीस दिन तक मक्के को घेरे रखा। उसने अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर को मात देने की कोशिश में काबे पर भी आग बरसाई गई। लेकिन जुबैर को गिरफ्तार नहीं कर सका। इस बीच यज़ीद के मरने की खबर आई और मक्के में हर तरफ़ जश्न का माहोल हो गया और शहर का नक्शा ही बदल गया। इब्ने जुबैर को विजय प्राप्त हुई और हसीन बिन नुमैर को भाग कर मदीने जाना पड़ा।

यज़ीद की मौत:

यज़ीद की मौत को लेकर इतिहासकारों में अलग अलग राय है। कुछ लोगों का मानना है कि एक दिन यज़ीद महल से शिकार खेलने निकला और फिर जंगल में शिकार का पीछा करते हुए अपने साथियों से अलग हो गया और रास्ता भटक गया

और बाद में खुद ही जंगली जानवरों का शिकार बन गया। लेकिन कुछ इतिहासकार मानते हैं 38 साल कि उम्र में क़ोलंज के दर्द(पेट में उठने वाला ऐसा दर्द जिसमें पीड़ित हाथ पैर पटकता रहता है) का शिकार हुआ और उसी ने उसकी जान ली।

जब यज़ीद को अपनी मौत का यकीन हो गया तो उस ने अपने बेटे मुआविया बिन यज़ीद को अपने पास बुलाया और हुकूमत के बारे में कुछ अंतिम इच्छाएँ बतानी चाहीं। अभी यज़ीद ने बात शुरू ही की थी कि उसके बेटे ने एक चीख मार कर कहा “खुदा मुझे उस सल्तनत से दूर रखे जिस कि बुनियाद रसूल के नवासे के खून पर रखी गई हो” । यज़ीद अपने बेटे के यह अलफ़ाज़ सुन कर बहुत तड़पा मगर मुविया बिन यज़ीद लानत भेज कर चला गया। लोगों ने उसे बहुत समझाया की तेरे इनकार से बनू उमय्या की सल्तनत का ख़ात्मा हो जाएगा मगर वह राज़ी नही हुआ। यज़ीद तीन दिन तक तेज़ दर्द में हाथ पाँव पटक पटक कर इस तरह तड़पता रहा कि अगर एक बूँद पानी भी टपकाया जाता तो वह तीर की तरह उसके हलक़ में चुभता था। यज़ीद भूखा प्यासा तड़प तड़प कर इस दुनिया से उठ गया तो बनू उमय्या के तरफ़दारों ने ज़बरदस्ती मुआविया बिन यज़ीद को गद्दी पर बिठा दिया। लेकिन वह रो कर और चीख़ कर भागा और घर में जाकर ऐसा घुसा

की फिर बाहर न निकला और हुसैन हुसैन के नारे लगाता हुआ दुनिया से रुखसत हो गया।

कुछ लोगों का मानना है कि 21 साल के इस युवक को बनू उमय्या के लोगों ने ही क़त्ल कर दिया क्योंकि गद्दी छोड़ने से पहले उसने साफ़ साफ़ कह दिया था कि उस के बाप और दादा दोनों ने ही सत्ता ग़लत तरीकों से हथियाई थी और इस सत्ता के असली हक़दार हज़रत अली और उनके बेटे थे। मुआविया बिन यज़ीद की मौत के बाद मर-वान ने सत्ता पर क़ब्ज़ा कर लिया और इस बीच उबैद उल्लाह बिन ज़ियाद ने इराक पर क़ब्ज़ा कर लिया और मुल्क में पूरी तरह अराजकता फ़ैल गई।

यज़ीद की मौत की खबर सुन कर मक्के का घेराव कर रहे यजीदी कमांडर हसीन बिन नुमैर ने मदीने की ओर रुख किया और इसी आलम में उसका सारा अनाज और गल्ला ख़तम हो गया। भटकते भटकते मदने के करीब एक गाँव में इमाम हुसैन के बेटे हज़रत जैनुल आबिदीन मिले तो इमाम ने भूख से बेहाल अपने इस दुश्मन की जान बचाई। इमाम ने उसे खाना और गल्ला भी दिया और पैसे भी नहीं लिए। इस बात से प्रभावित हो कर हसीन बिन नुमैर ने यज़ीद की

मौत के बाद इमाम से कहा की वह खलीफ़ा बन जाएँ लेकिन इमाम ने इनकार कर दिया और यह साबित कर दिया की हज़रत अली की संतान की लड़ाई या जिहाद खिलाफत के लिए नहीं बल्कि दुनिया को यह बताने के लिए थी कि इस्लाम ज़ालिमों का मज़हब नहीं बल्कि मजलूमों का मज़हब है।

ख़ून के बदले का अभियान:

मक्के, मदीने के बाद कूफ़े में भी क्रांति की चिंगारियां भड़कने लगीं। वहाँ पहले एक दल तव्वाबीन(तौबा करने वालों) के नाम से उठा। इस दल के दिल में यह कसक थी कि इन्हीं लोगों ने इमाम हुसैन को कूफ़ा आने का न्योता दिया। लेकिन जब इमाम हुसैन कूफ़ा आये तो इन लोगों ने यज़ीद के डर और खौफ़ के आगे घुटने टेक दिए। और जिन 18 हज़ार लोगों ने इमाम हुसैन का साथ देने कि कसम खायी थी, वह या तो यज़ीद द्वारा मार दिए गए थे या जेल में डाल दिए गए थे। तव्वाबीन, खूने इमाम हुसैन का बदला लेने के लिए उठे लेकिन शाम(सीरिया) की सैनिक शक्ति का मुकाबला नहीं कर सके।

इमाम हुसैन के क़त्ल का बदला लेने में सिर्फ़ हज़रत मुख़्तार बिन अबी उबैदा सक़फ़ी को कामयाबी मिली। जब इमाम हुसैन शहीद किए गए तो मुख्तार जेल में थे। इमाम हुसैन की शहादत के बाद हज़रत मुख़्तार को अब्दुल्लाह बिन उमर कि सिफ़ारिश से रिहाई मिली। अब्दुल्लाह बिन उमर, मुख़्तार के बहनोई थे और शुरू शुरू में यज़ीद की बैयत न करने वालों में आगे आगे थे लेकिन बाद में वह बनी उमय्या की ताक़त से दब गए।

मुख़्तार ने रिहाई मिलते ही इमाम हुसैन के क़ातिलों से बदला लेने की योजना बनाना शुरू कर दी। उन्होंने हज़रत अली के सब से क़रीबी साथी मालिके अशतर के बेटे हज़रत इब्राहीम बिन मालिके अशतर से बात की। उन्होंने इस अभियान में मुख्तार का हर तरह से साथ देने का वायदा किया। उन दिनों कूफ़े पर ज़ुबैर का क़ब्ज़ा था और इन्तिक़ामे खूने हुसैन का काम शुरू करने के लिए यह ज़रूरी था कि कूफ़े को एक आज़ाद मुल्क घोषित किया जाए। कूफ़े को क्रांति का केंद्र बनाना इस लिए भी ज़रूरी था कि इमाम हुसैन के ज़्यादातर क़ातिल कूफ़े में ही मौजूद थे और अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर सत्ता पाने के बाद इन्तिक़ाम-ए-खूने हुसैन के उस नारे को भूल चुके थे जिसके सहारे उन्होंने सत्ता हासिल की थी। मुख्तार और इब्राहीम

ने अपना अभियान कूफ़े से शुरू किया और इब्ने ज़ुबैर के कूफ़ा के गवर्नर अब्दुल्लाह बिन मुतीअ को कूफ़ा छोड़ कर भागना पड़ा।

इस के बाद हज़रत मुख़्तार और हज़रत इब्राहीम की फ़ौज ने इमाम हुसैन और उनके परिवार वालों को क़त्ल करने वाले क़ातिलों को चुन चुन कर मार डाला। इमाम हुसैन के क़त्ल का बदला लेने के लिए जो जो लोग भी उठे उन में हज़रत मुख्तार और इब्राहीम बिन मालिके अशतर का अभियान ही अपने रास्ते से नहीं हटा। इस अभियान की ख़ास बात यह थी कि इन लोगों ने सिर्फ़ क़ातिलों से बदला लिया, किसी बेगुनाह का खून नहीं बहाया।

उधर मदीने में अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर पैग़म्बरे इस्लाम (स) के परिवार वालों से नाराज़ हो चुके थे। यहाँ तक कि इब्ने ज़ुबैर ने इमाम हुसैन के छोटे भाई मोहम्मद-ए-हनफ़िया और पैग़म्बरे इस्लाम (स) के चचेरे भाई इब्ने अब्बास को एक घर में बंद करके ज़िन्दा जलाने की कोशिश भी कि लेकिन इसी बीच हज़रत मुख़्तार का अभियान शुरू हो गया और उन दोनों कि जान बच गई।

हज़रत मुख्तार और इब्ने ज़ुबैर की फ़ौजों में टकराव हुआ और मुख़्तार हार गए लेकिन तब तक वह क़ातिलाने इमाम हुसैन को पूरी तरह सजा दे चुके थे।

फेहरिस्त

इस्लाम सरज़मीने मक्का से सरज़मीने कर्बला तक 1

इस्लाम मक्के से कर्बला तक 2

मुसलमानों के मुताबिक अब तक कुल 313 रसूल/नबी, अल्लाह की तरफ से भेजे जा चुके हैं, इनमें से 5 रसूल बड़े रसूल हैं. जो कि हैं: 2

कुछ और दुसरे नबियों के नाम हैं: 3

इस्लाम क्या है? 4

हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा: 4

शोएब-ए-अबू तालिब 13

पैग़म्बर साहब को जान को खतरा 14

मदीना 15

सुलह-ए-हुदेबिया 21

फतहे मक्का 22

आखरी हज 26

पैगंबर का निधन 27

सक़ीफा 28

शहादते हजरत फातेमा 30

हज़रत अली और उनके विरोधी.....33

जंग-ए-जमल.....36

जंगे सिफ्फीन.....39

हज़रात अली की शहादत.....42

26 जुलाई 661ई० को इमाम हसन और अमीर मुआविया के बीच एक संधि हुई जिसमें यह तय हुआ:.....44

यजीद की सत्ता.....46

यज़ीद का परिचय.....48

इमाम हुसैन (अ) की हिजरत:.....51

कर्बला में धर्म और अधर्म का टकराव:.....54

हुर्र का आना.....56

2 मौहर्रम.....56

7 मौहर्रम.....57

शबे आशूर.....58

10 मौहर्रम.....61

इमाम हुसैन (अ) के साथ शहीद होने वाले कुछ ख़ास रिश्तेदार और साथी:.....63

अब्दुल्लाह बिन मुस्लिम बिन अक़ील:.....68
मोहम्मद बिन मुस्लिम बिन अक़ील:.....68
जाफ़र बिन अक़ील:.....69
अब्दुल रहमान बिन अक़ील:.....69
मोहम्मद बिन अबी सईद बिन अक़ील:.....70
अबू बक़र बिन हसन:.....70
मोहम्मद बिन अली:.....70
अब्दुल्लाह बिन अली:.....71
उस्मान बिन अली:.....72
जाफ़र बिन अली:.....73
अली असग़र:.....73
इमाम हुसैन (अ) की शहादत:.....74
शहादत के बाद:.....77
शाम.....79
क्रांति की आग:.....81
यज़ीद की मौत:.....83
ख़ून के बदले का अभियान:.....86